भारतीय ग्रन्थमाला संख्या—६

भारतीय राजस्व

"किसी देश की राजस्व-व्यवस्था की कसौटी, वहां की जनता की सुख-स्मृद्धि है।"

भारतीय ग्रन्थमाला-संख्या ६

Bhartiya Rajsva.

भारतीय राजस्व

ब्रिटिश भारत के सरकारी आय-व्यय का
आलोचनात्मक विवेचन

लेखक

भारतीय शासन, भारतीय अर्थशास्त्र, भारतीय जागृति, आदि पुस्तकों
के रचयिता

भगवानदास केला

Bhagwan Das Kelā.

प्रकाशक

व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन

मुद्रक

नारायण प्रसाद, नारायण प्रेस, प्रयाग।

दूसरा संस्करण } सन् १९३८ ई० { मूल्य चौदह आने

1938

निवेदन

प्रत्येक राष्ट्रीय कार्यकर्ता भारत-माता की दरिद्रता, और भारत-सन्तान के आर्थिक कष्टों से परिचित है; अनेक तो भुक्त-भोगी ही हैं। तथापि अधिकांश व्यक्ति प्रायः यह विचार नहीं करते कि देश की निर्धनता का एक मुख्य कारण यहां की राजस्व-व्यवस्था का दूषित होना है। इस पुस्तक में यह बात समझाने का प्रयत्न किया गया है, और यह भी बताया गया है कि इस व्यवस्था में क्या-क्या सुधार किया जाना अत्यन्त आवश्यक है।

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् १९२३ ई० में हुआ था। अपने विषय की एक-मात्र पुस्तक होने के कारण इस का खासा स्वागत हुआ, हिन्दी साहित्य सम्मेलन आदि विविध संस्थाओं की परीक्षा के पाठ्य-क्रम में इसे स्थान मिला; संयुक्त प्रान्त और गवालियर आदि में पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत होने से भी इस के प्रचार में सहायता मिली। हां, हम ग्रन्थमाला की अन्य पुस्तकों की भांति इसकी ओर भी विशेष ध्यान न दे सके। सर्व साधारण पाठकों की ऐसे विषयों की ओर रुचि कम है ही। अस्तु, इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की प्रतियाँ अब से कुछ समय पूर्व तक बनी रहीं। पर अब इस के नये संस्करण की मांग होने लगी। जैसे-तैसे हमारे कार्य-काल में ही इस पुस्तक के यथेष्ठ संशोधित रूप में उपस्थित किये जाने का अवसर आ गया, इसे हम अपनी वर्तमान परिस्थिति में ग़नीमत समझते हैं।

गत वर्ष हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, प्रयाग से हमारी 'राजस्व' नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई है। उसमें सिद्धान्त की ही चर्चा है, उसका विषय वर्णनात्मक है। हमारी इस पुस्तक की विशेषता इसकी आलोचनात्मक शैली है। हमने इसमें पाठकों को यही नहीं बताना चाहा है कि किस-किस मद्द में कितनी आय, अथवा कितना व्यय होता है, कौन उसका प्रबन्ध करता है, और सिद्धान्त से वह कहाँ तक उचित है, हमने तो व्यवहारिकता पर दृष्टि रखी है। राजस्व-व्यवस्था चाहे-जितने अच्छे स्वरूप वाली क्यों न हो, यदि उससे जनता की सुख-स्मृद्धि बढ़ने में सहायता नहीं मिलती, तो हम उसकी कैसे सराहना कर सकते हैं! अस्तु, हमने इस पुस्तक में आर्थिक स्वराज्य का प्रतिपादन किया है। आशा है, जब कि भारत-संतान को बहुत-कुछ प्रान्तीय स्वराज्य मिल गया है, और जब कि केन्द्र में उत्तरदायित्व की प्राप्ति सन्निकट है, इस पुस्तक का खूब अध्ययन और मनन होगा। भारतीय ग्रन्थ-माला की अधिकांश अन्य पुस्तकों की भाँति यह रचना भी बड़े-बड़े विद्वानों के लिए न होकर मध्य श्रेणी के पाठकों के लिए है।

इस पुस्तक के विषय के सम्बन्ध में हिन्दी अंगरेजी का जो भी साहित्य हमें उपलब्ध हो सका, उसका हम अवलोकन करते रहे हैं। श्री० मित्रवर प्रोफेसर दयाशंकर जी दुबे एम० ए, दारागंज, से हमें विविध बातों पर विचार-विनिमय करने का अवसर मिला है। उनकी सहायता के लिए हम बहुत कृतज्ञ हैं।

विनीत

भगवानदास केला

समर्पण

श्रीमान् पंडित दयाशंकर जी दुबे

एम० ए०, एल-एल० बी०

अर्थशास्त्र-शिक्षक, प्रयाग-विश्वविद्यालय, प्रयाग

श्री० सुहृद्वर !

मुझ जैसे व्यक्ति द्वारा, भारतीय ग्रन्थमाला के रूप में जो थोड़ा-बहुत आर्थिक और राजनैतिक साहित्य का कार्य हुआ है, वह आप मित्रों के बहु-विध सहयोग से ही बन आया है। उसकी स्मृति-स्वरूप यह पुस्तक सादर और सप्रेम आपको समर्पित है; स्वीकार कर कृतार्थ करें।

विनीत

भगवानदास केला

विषय सूची

भारतीय राजस्व

पहला अध्याय

राजस्व और आर्थिक स्थिति

"जनता की आर्थिक उन्नति-अवनति बहुत कुछ राजस्व व्यवस्था पर निर्भर रहती है।"

सरकारी आय-व्यय और जनता का हानि-लाभ—इस पुस्तक में हमें यह विचार करना है कि भारतवर्ष में सरकार जो भिन्न-भिन्न कार्य करती है, उन में कितना-कितना रुपया खर्च होता है, तथा वह रुपया जनता से किस-किस प्रकार के करों या टैक्सों आदि द्वारा वसूल किया जाता है। साथ ही हमें यह भी सोचना है कि किस-किस सरकारी खर्च से एवं सरकारी आय से जनता की कहां तक उन्नति होती है, अथवा इसके विपरीत, जनता को हानि पहुँचती है। यह सर्व-विदित है कि प्रत्येक देश में जब शासन प्रबन्ध होता है तो वहां सरकार को विविध कार्यों के लिए रुपये की आवश्यकता होती है, और यह रुपया किसी न किसी नाम से, तथा किसी न किसी रूप में जनता से वसूल किया जाता है। परन्तु यदि यह रुपया उचित कार्यों में जनता के हित का सम्यक् विचार करके खर्च किया जाता है, और इस के वसूल

करने का ढंग भी ऐसा होता है, जो सर्वसाधारण की परिस्थिति के अनुकूल, तथा सुविधाजनक हो तो देश उन्नत और स्मृद्धिशाली होता जाता है; यदि इस के विपरीत, सरकार द्वारा किये जाने वाले खर्च और प्राप्त की जाने वाली आय में सार्वजनिक हितों की अवहेलना की जाती है तो उन्नत और स्मृद्धिशाली देश भी थोड़े-बहुत दिनों में अवनत और दरिद्र हो जाता है।

हमारे प्राचीन आचार्यों का मत—शुक्राचार्य और कौटिल्य (चाणक्य) आदि भारतवर्ष के प्राचीन आचार्यों का यह मत रहा है कि राजा का प्रजा से व्यवहार ऐसा होना चाहिए जैसा माली का पेड़ों से। माली पेड़ों को सींचता है, उन की रक्षा और वृद्धि करता है; अन्त में वह उन पके हुए फलों और खिले हुए फूलों को चुन लेता है, जो कुछ समय में वृथा गिर जाने वाले हों। इन फलों और फूलों के ले लेने से पेड़ों की कोई हानि नहीं होती। इसी तरह सरकारी करों से जनता को कोई कष्ट या असुविधा नहीं होनी चाहिए।

गाय घास चारा खा कर अपने स्वामी को बहु-मूल्य और उपयोगी दूध देती है। उसी प्रकार राजा का भी कर्तव्य है कि जनता जनार्दन से जो द्रव्य ले उसे अच्छे और अधिक उपयोगी रूप में वापिस दे; अर्थात् उस का इस प्रकार सोच-समझ कर मितव्ययिता-पूर्वक व्यय करे कि जितना लाभ उस द्रव्य से जनता स्वयं उठा सकती, उस से कहीं अधिक लाभ उसे उस धन के राज्य द्वारा ख़र्च होने से मिले; जनता सुखी और संतुष्ट रहे।

भारतीय राजस्व के उपयोग की कसौटी—सरकारी आय-व्यय अर्थात राजस्व के विषय में अनेक सिद्धान्त और नियम स्थिर हो चुके हैं, और राजस्व को विज्ञान का स्वरूप प्राप्त हो रहा है। राजस्व-विज्ञान एक गम्भीर, विस्तृत और विचारणीय विषय है, परन्तु यहां हमें इस पुस्तक में विशेषतया यही देखना है कि भारतवर्ष में राजस्व का उपयोग राष्ट्रीय हित की दृष्टि से होता है, या नहीं। जिन आदमियों से जो कर वसूल किये जाते हैं, उन में वे कर देने की सामर्थ है या नहीं, अर्थात् अपनी उस आय का त्याग करने में उन्हें अपने भोजन-वस्त्र या शिक्षा आदि आवश्यकताओं की पूर्ति से तो वंचित नहीं हो जाना पड़ता, इसी प्रकार, जिन आदमियों के वास्ते सरकारी आय का रुपया खर्च किया जाता है, क्या उन्हीं आदमियों को उस खर्च की सब से अधिक आवश्यकता है। इस के अन्तर्गत यह भी विचार है कि जिस काम के लिए जितना रुपया खर्च किया जाता है, क्या उस में पर्याप्त मितव्ययिता की जाती है, अर्थात् वह काम उतने से कम रुपये में नहीं किया जा सकता।

स्मरण रहे, सरकारी आय का बहुत-सा रुपया बहुत ही साधारण स्थिति के आदमियों से वसूल होता है, अतः उस के एक-एक पैसे का खर्च करते हुए खूब सोच-विचार करना आवश्यक है। 'माले-मुफ्त, दिले बेरहम' की नीति घातक है। राजस्व-मंत्रियों की विद्वता और पांडित्य-सूचक बड़ो-बड़ी वक्तृताओं से हमें भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। उन्हे भारी-

भारी वेतन दे कर रखने का उपयोग इस बात में नहीं है कि व्यवस्थापक सभाओं में उन के लच्छेदार भाषण सुनने को मिलें, और उनकी रिपोर्ट से कुछ पत्र-पाठकों आदि का मनोरंजन हो जाय। राजस्व-मंत्रियों की योग्यता की कसौटी यह है कि वे देश की आर्थिक परिस्थिति में सम्यक् सुधार करें, और सर्वसाधारण की सुख-समृद्धि में सहायक हों।

भारतवर्ष का आर्थिक पतन—इस बात पर विशेष ज़ोर देने की आवश्यकता इस लिए है कि आज-कल अखबारों, रिपोर्टों, भाषणों और लेखों का युग है। इन के द्वारा बहुधा अधिकारी देश की वास्तविक परिस्थिति के विषय में भ्रम-मूलक प्रचार कर देते हैं। सत्यता की जानकारी चाहने वालों को बाह्य बातों की भूल-भुलैया न पड़ कर सतह के नीचे की बातों का निरीक्षण और अन्वेशन करना चाहिए। भारतवर्ष की वर्तमान आर्थिक स्थिति कैसी है, यह उन लोगों से छिपा नहीं है जो बड़े-बड़े नगरों के राज-पथों को छोड़ कर देश के अन्दरूनी भागों में जाते हैं, और आंखें खोल कर देखते हैं। शहरों में भी असंख्य मजदूर अध-भूखे और अर्द्ध-नग्न रहते हैं, चाहे उन के मुंह में पान और बीड़ी, तथा बालों में सुगंधित तेल क्यों न हो। देहातों में तो ऐसी जनता भरी ही पड़ी है, जो दिन-रात कठोर सर्दी गर्मी में घोर परिश्रम करते हुए भी यह नहीं जानती कि दो वख्त पेट-भर भोजन पाना क्या होता है, जो वास्तव में 'जीती नहीं है, जीने के लिए किसी प्रकार छटपटाती हैं।'

और, यह दशा है, उस भारतभूमी की! जो हज़ारों वर्ष पहले से लेकर अंगरेज़ों का शासन आरम्भ होने तक संसार में स्वर्ण-भूमि या सोने की चिड़िया प्रसिद्ध रही है।

जिस समय योरपीय सभ्यता का आदि श्रोत रोम अपनी शिक्षा एवं कला-कौशल आदि में उन्नति के शिखर पर था, वह यहां से बहुमूल्य तैयार सामान मंगाता था। उसके इतिहास-लेखक इस बात की शिकायत करते थे कि वहां का बहुत-सा सोना प्रति वर्ष भारतवर्ष खिंचा आता है। इस से अनुमान हो सकता है कि भारतवर्ष के व्यवसाय और शिल्प उस समय कितने उन्नत रहे होंगे। कई शताब्दियों तक योरप आदि के भिन्न-भिन्न देश भारत-वर्ष से सीधा व्यापारिक सम्बन्ध करके लाभ उठाने के लिए चिन्तित रहे। स्पेन का सुप्रसिद्ध नाविक यात्री कोलम्बस भारतवर्ष का सामुद्रिक मार्ग खोज निकालने के विकट प्रयत्न में अमरीका जा पहुँचा, और इस प्रकार इतिहास में वह 'नयी दुनिया' का पता लगाने वाले के रूप में अमर हो गया। पुर्तगाल, हालैंड और इंग-लैंड वालों ने भारतवर्ष आने के लिए कितने कष्ट उठाए, कितनी जानें गवाईं, और कितना द्रव्य खर्च किया! इन राज्यों की व्या-पारिक कम्पनियों और राज-दूतों ने यहां के तत्कालीन छोटे-बड़े शासकों से व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए उनकी किस प्रकार विनम्रता-पूर्वक भेट-पूजा, खुशामद मिन्नत की, तथा उन्हें प्रसन्न करने के लिए कैसे-कैसे प्रयत्न किये! भारतवर्ष के मसाले, खांड़, तथा सूती, ऊनी और रेशमी वस्त्र और अन्य तैयार माल के

व्यापार से प्रत्येक पाश्चात्य राज्य अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहता था, इसलिए उनका आपस में कैसी ईर्षा, द्वेष और युद्धों का व्यवहार रहा ! अहा ! उस समय भारतीय जनता कैसी सुखी और समृद्ध थी, यहां के किसान और कारीगर कैसी निश्चिन्तता और आनन्द का जीवन व्यतीत करते थे ! वेकारी का पता न था, शिक्षा स्वास्थ्य आदि के साधन सर्वसाधारण को सुलभ थे। यह सब अब इतिहास का विषय है।

इन बातों पर, स्वयं सरकारी रिपोर्टों के आधार पर लिखे हुए, सर विलयम डिग्वी के 'प्रासपरस इंडिया' ('धनी' भारत), जे. आर. मेग्डोनल्ड के 'अवेकनिंग आफ़ इंडया' (भारतवर्ष की जागृति), दादा भाई नौरोजी के 'पावरटी ऐंड अनब्रिटिश रूल इन इंडया' (भारतवर्ष की निर्धनता और अ-ब्रिटिश शासन) आदि ग्रन्थों में, विविध सुप्रसिद्ध यात्रियों के संस्मरणों में, एवं अनेक निस्पक्ष इतिहास-पुस्तकों में सविस्तार प्रकाश डाला गया है। हम इन प्रामाणिक कृतियों के उद्धरण, स्थानाभाव के कारण, देने में असमर्थ हैं। संक्षेप में, यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि अंगरेज़ों के शासन से ठीक पहले की, भारत की आर्थिक स्मृद्धि के विषय में ऐसे प्रमाण मौजूद हैं जिनका खंडन नहीं किया जा सकता। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक के भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति की जी खोल कर प्रशंसा करने वाले निस्पक्ष लेखकों में कितने ही तो उच्च-पदस्थ सरकारी अधिकारी, ब्रिटिश पार्लिमेंट के मेम्बर, और

इङ्गलैंड के प्रधान मंत्री तक हैं। ऐसी दशा में तत्कालीन भारत की सुख-स्मृद्धि में कोई शंका करना उचित नहीं है।

दरिद्रता का मुख्य कारण—तो फिर वर्तमान घोर दुःख-प्रद परिस्थिति का कारण क्या ? क्या भारतवर्ष की भूमि और प्राकृतिक स्थिति में अन्तर आ गया, या भारतवर्ष में धन धान्य अब कम पैदा होता है ? नही; सरकारी रिपोर्टें इस का प्रमाण हैं। क्या भारतीय किसान और मज़दूर आदि अब मेहनत नहीं करते ? नहीं; वे तो अत्यधिक परिश्रम कर रहे हैं ? क्या भारतवर्ष की आबादी बेहद बढ़ गयी ? आबादी बढ़ तो ज़रूर रही है, पर एक तो वह अन्य अनेक देशों की अपेक्षा बहुत कम बढ़ी है; दूसरे, कृषि और उद्योग-धंधों की कार्य-पद्धति में वैज्ञानिक उन्नति से जिस परिमाण में उत्पत्ति की वृद्धि हुई है, उस की अपेक्षा भी जन-संख्या कम बढ़ी है।

फिर इस संसार-प्रसिद्ध 'सोने की चिड़िया', 'रत्न-गर्भा' 'स्वर्ण-भूमि' की यह दुर्दशा क्यों ? इस का एक मुख्य कारण भारतीय राजस्व-व्यवस्था का ठीक न होना है, अर्थात् सरकार के खर्च करने की पद्धति तथा करों के प्राप्त किये जाने की प्रणाली का सदोष होना है। इस बात का स्पष्टीकरण आगे के पृष्ठों में होगा। प्रत्येक देश-हितैषी के लिए यह विषय खूब मननीय और विचारणीय है।

नोट—इस पुस्तक में ब्रिटिश भारत के ही सरकारी आय-व्यय का विचार किया गया है, देशी राज्यों के आय-व्यय का नहीं।

ऐसा करने के कई कारण हैं। प्रथम तो सब देशी राज्यों की राजस्व-पद्धति समान नहीं है, किसी में किसी प्रकार की, और किसी में किसी प्रकार की है। पुनः जैसा कि हम ने अपने 'भारतीय शासन' में कहा है, अधिकांश देशी राज्य अपना वार्षिक शासन-विवरण या हिसाब प्रकाशित नहीं करते, जो करते भी हैं वे प्रायः अंगरेज़ी में करते हैं। वे शासन-रिपोर्ट आदि सर्वसधारण को सुलभ नहीं होतीं। इस लिए यह ठीक-ठीक ज्ञात नहीं होता कि किसी खास वर्ष में किसी राज्य ने किस-किस मद मद में कितना-कितना ख़र्च किया, तथा उसे किस-किस मद से कितनी-कितनी आय हुई। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित 'इंडयन स्टेट्स' पुस्तक में सब राज्यों की नामावली आदि के साथ उन की वार्षिक आय के अंक भी दिये गये हैं। पर इस में भी व्यय के अंक नहीं दिये गये। यह अनुमान किया जा सकता है कि व्यय की रक़म आय की रक़म के लगभग ही होगी। कुछ राज्यों पर तो ऋण-भार भी बहुत अधिक है यद्यपि उन्हों ने विशेष उत्पादक कार्यों में पूंजी नहीं लगा रखी है। समस्त राज्यों की वार्षिक आय कुल मिला कर लगभग पचास करोड़ रुपये है। पर्याप्त सामग्री, और स्थान के अभाव में इस आय की, ब्रिटिश भारत की आय से तुलना करना, अथवा उस पर विशेष आलोचनात्मक विचार प्रकट करना ठीक नहीं है।

दूसरा अध्याय

सरकारी व्यय

" उचित रीति से रुपया प्राप्त करना अवश्य ही कठिन है, पर उसे पूर्णतया सत्कार्यों में खर्च करना और भी अधिक कठिन है।"

व्यय का महत्व—सरकारी आय-व्यय के सम्बन्ध में विचार करते हुए पहले यह जान लेना चाहिए कि उस में और लोगों के निजी आय-व्यय में विशेष अन्तर है। साधारण आदमियों की आमदनी बहुत-कुछ निश्चित रहती है, वे जानते हैं या अन्दाज़ कर लेते हैं कि महिने में, या छः माह या साल भर में इतनी आमदनी होगी। उस आमदनी के विचार से ही वे यह निश्चय करते हैं कि हमें अमुक-अमुक कार्य करने चाहिएँ।

परन्तु सरकार की बात दूसरी ही है। वह पहले यह सोचती है कि उसे इस वर्ष अमुक-अमुक कार्य करने आवश्यक हैं, उन का भली भांति निश्चय करके वह यह विचार करती है कि इन कार्यों में कितना खर्च होगा, और इस खर्च के लिए किस-किस मद से कितनी-कितनी आमदनी वसूल करनी चाहिए। यों तो आय और व्यय का घनिष्ट सम्बन्ध है, एक का विचार दूसरे की अवहेलना करके नहीं किया जा सकता; तथापि जहां लोगों के निजी कारोबार में आमदनी का विचार मुख्य होता है, सरकार पहले खर्च का विचार करती है।

सरकार के कार्य; केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय—भारतीय राजस्व में हमें पहले जान लेना चाहिए कि यहाँ सरकार किस-किस कार्य में खर्च करती है। इस प्रकार यह जानना आवश्यक है कि यहां सरकार क्या-क्या कार्य करती है। इस के उल्लेख करने की आवश्यकता इस लिए है कि सरकारों के काम निर्धारित या सुनिश्चित नहीं हैं, उन की सूची देश-काल के अनुसार बदलती रहती है। इस प्रकार विविध राज्यों में सरकार के कार्य भिन्न-भिन्न होते हैं। स्मरण रहे कि सरकार से मतलब केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों से तो होता ही है, इन के अतिरिक्त स्थानीय-प्रबन्ध संस्थाएँ (म्युनिसिपैलिटी, ज़िला-बोर्ड आदि) भी इसी के अन्तर्गत होती हैं। भारतीय राजस्व में इन सब के आय-व्यय का विचार होता है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि सेना, रेल, डाक, तार, मुद्रा और टकसाल आदि जो कार्य सम्पूर्ण राज्य के लिए किये जाते हैं, उन के वास्ते खर्च भारत-सरकार करती है। यह खर्च केन्द्रीय व्यय कहलाता है। जो खर्च किसी खास प्रान्त के वास्ते आवश्यक होता है, और जिस में भिन्न-भिन्न प्रकार की पद्धति बर्ती जाती हैं, उस के लिए उस प्रान्त की सरकार खर्च करती है। यह खर्च प्रान्तीय व्यय कहलाता है; यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि आबपाशी, जंगल, उद्योग, पुलिस, न्यायालय, और जेल, आदि। [चीफ़-कमिश्नरों के प्रान्तों में होने वाला खर्च भारत-सरकार ही करती है।] जो कार्य किसी नगर, ग्राम या ग्राम-समूह के लिए

किया जाता है, उस के लिए खर्च स्थानीय संस्थाएँ करती हैं। यह खर्च स्थानीय व्यय कहलाता है।

जैसा कि आगे बताया जायगा, अब सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार प्रान्तों में बहुत कुछ उत्तरदायी सरकारों की स्थापना हो गयी है। वे, विशेषतया कांग्रेसी सरकारें, बहुत सोच-समझ कर खर्च करती हैं, उन पर लोक-प्रधिनिधियों का नियंत्रण है। स्थानीय संस्थाएँ प्रान्तीय सरकारों के अधीन हैं, अतः उनके द्वारा होने वाला व्यय भी, (जिस का परिमाण अपेक्षाकृत कम ही होता है) जनता के हित की दृष्टि से ही किया जाता है। इसके विपरीत, केन्द्रीय सरकार में जनता के प्रति उत्तरदायित्व नाम-मात्र को ही है। उस के द्वारा जो खर्च होता है, उस पर जनता के प्रतिनिधियों का नियंत्रण प्रायः नहीं के समान है।

व्यय का वर्गीकरण—सरकार के कर्तव्यों के अनुसार व्यय का वर्गीकरण इस प्रकार होना चाहिए :—

(१) रक्षा के लिए—(स्थल) सेना, जल-सेना, वायु-सेना, सैनिक सामग्री।

(२) शान्ति सुव्यवस्था के लिए—इस में पुलिस, न्याय, जेल और शासन सम्मिलित हैं। शासन में गवर्नर-जनरल, गवर्नरों, और ज़िला मजिस्ट्रेटों आदि के सम्बन्ध में किये हुए खर्च का समावेश होता है। इस कार्य के लिए 'राजनैतिक खर्च' की भी आवश्यकता होती है। सीमा पर रहने वाले कुछ सरदारों को शान्ति-स्थापना के लिए जो एलाउंस (भत्ता) दिया जाता है, तथा

एजंट गवर्नर-जनरल और पोलिटिकल एजंटों के वेतनादि में जो खर्च होता है, वह 'राजनैतिक खर्च' के अंतर्गत गिना जाता है। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक-मंडलों और सेक्रेटरियों की मद्द में किये जाने वाले खर्च का, पेंशनों का, और कर वसूल करने के खर्च का समावेश भी शान्ति-सुव्यवस्था की मद्द में ही होता है।

(३) जन-हितकारी—शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि, उद्योग, सिविल निर्माण कार्य, मुद्रा, टकसाल और विनिमय, भूगर्भ, वनस्पति तथा जीवविद्या-सम्बन्धी कार्य, मनुष्य-गणना, अकाल-रक्षा।

(४) व्यवसायिक—रेल, डाक, तार, जंगल, और नहर आदि।

भारतवर्ष में सरकार व्यय का वर्गीकरण उपर्युक्त प्रकार से नहीं करती, वह अपने आय व्यय के अनुमान-पत्र में विविध रकमें इस प्रकार दिखाती है :—

१—कर वसूल करने का खर्च—आयात-निर्यात-कर, आय-कर, नमक, अफीम, मालगुजारी, स्टाम्प (क) गैर-अदालती (ख) अदालती, जङ्गल, रजिस्टरी।

२—रेल

३—आवपाशी

४—डाक और तार

५—ऋण

६—सिविल-शासन—साधारण शासन, लेखा-परीक्षा, पुलिस

न्याय, जेल, बंदरगाह, धर्म (ईसाई), राजनैतिक, वैज्ञानिक, शिक्षा. चिकित्सा, स्वास्थ्य, कृषि, उद्योगधंधे, हवाई जहाज़, विविध विभाग।

७—मुद्रा, टकसाल और विनिमय

८—निर्माण-कार्य और सड़कें

९—विविध—अकाल और बीमा, पेंशन और एलाउंस, स्टेशनरी और छपाई, विविध,

१०—सेना—स्थल-सेना, जल-सेना, वायु-सेना, सैनिक निर्माण कार्य।

११—प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकार की पारस्परिक लेनी-देनी।

यह वर्गीकरण ठीक नहीं है; इस के क्रम में कोई सिद्धान्त नहीं है। इसे न बदलने का कारण यह है कि सरकार को फ़िर तुलना के लिए पुराने बजटों को भी नवीन रूप में लाना होगा। इस में कुछ श्रम और कठिनाई अवश्य है। पर सुधार की दृष्टि से ऐसा करना उपयोगी है।

विचारणीय बात—सरकार के सभी प्रकार के व्यय अपनी-अपनी जगह उपयोगी हो सकते हैं। परन्तु विचार यह करन होता है कि किस कार्य में कितना तथा किस अनुपात से व्यय होता है; वह जनता को बहुत मंहगा तो नहीं पड़ता। उस में व्यय किये हुए द्रव्य से लोगों का यथेष्ट हित-साधन होता है या नहीं। उदाहरणार्थ देश-रक्षा की बात लीजिए। यह एक आवश्यक

कार्य है, परन्तु यदि इस में इतना अधिक (लगभग पैंतालीस करोड़ रुपये प्रति वर्ष) खर्च कर दिया जाय कि जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि के लिए भी धनाभाव रहे, और नाम-मात्र की रकमों से संतोष करना पड़े, यही नहीं, उसे अध-भूखा और अर्द्ध-नग्न रहने की नौबत आये, तो देश-रक्षा पर किये गये इतने खर्च को कौन विचारशील व्यक्ति बुद्धिमत्ता का कार्य कहने का साहस करेगा ? यदि किसी परिवार की कुल आमदनी दो सौ रुपये है, और वह पैंतालीस या पचास रुपये केवल घर की पहरेदारी की मद्द में खर्च करे तो उसे क्या कहा जायगा ! तथापि भारतीय राजस्व में सेना की बात ऐसी ही है। इस विषय में विशेष आगे लिखा जायगा ! यहां तो यही कहना है कि सरकार के कार्यों की सूची तथा उन का विवरण देख कर ही उस के प्रबन्ध की प्रशंसा करना उचित नहीं है—उस के साथ यह भी सोचना होगा कि वह सिद्धान्त से कहां तक उचित है।

व्यय का सिद्धान्त—राजस्व के विद्वानों ने व्यय के निम्न लिखित सिद्धान्त स्थिर किये हैं :—

(१) जनता की भलाई की दृष्टि से समान उपयोगिता, (२) मितव्ययिता, (३) जनता के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकृति और (४) स्पष्टता, अर्थात् उसे सर्वसाधारण की भाषा में प्रकाशित कर के उन्हें उस के सम्बन्ध में यथेष्ट ज्ञान कराने की व्यवस्था।

समान उपयोगिता का अर्थ यह है कि प्रत्येक मद्द में व्यय इस परिमाण में किया जाय कि विविध मद्दों के व्यय की अन्तिम

इकाई जनता के लिए यथा-सम्भव समान उपयोगी हो। उदाहरण के लिए सेना में पैंतालीस करोड़ रुपये व्यय करने की बात लीजिए। इस का निर्णय करते समय सोचना होगा कि क्या अन्तिम एक करोड़ रुपये को इसी मद में खर्च करना ठीक होगा, अथवा उसे इस मद में खर्च न कर शिक्षा, स्वास्थ्य या उद्योग धंधों की उन्नति में खर्च करना अधिक लाभकारी होगा। यदि पिछली बात ठीक हो, तो सेना में चवालीस करोड़ रु खर्च करने की बात रहे। इस पर फिर उसी प्रकार विचार किया जाय। यदि पुनः मालूम पड़े कि इस मद का अन्तिम एक करोड़ रुपया इस मद की अपेक्षा अन्य मद में खर्च करना अधिक उपयोगी होगा तो सेना का व्यय तेतालीस, बियालीस, इकतालीस या चालीस करोड़ या उस से भी कम रखा जाय, और शेष रुपया इसी सिद्धान्त के अनुसार उन अन्य मदों में लगाया जाय, जिन में उस का लगाना जनता के लिए अधिक हितकर हो।

समान उपयोगिता की यह बात प्रत्येक मद के विविध भागों के सम्बन्ध में भी सोची जानी चाहिए। उदाहरणार्थ, किसी प्रान्त में शिक्षा में १५० लाख रु० खर्च किया जाता है; कल्पना करो पहले यह प्रस्ताव किया गया कि ३५ लाख उच्च शिक्षा में ४० लाख माध्यमिक शिक्षा में, ५० लाख प्रारम्भिक शिक्षा में और २५ लाख औद्योगिक शिक्षा में। इस में यह विचार करना होगा कि किसी एक भाग के खर्च के अन्तिम एक लाख रुपये की उपयोगिता अन्य भाग के अन्तिम एक लाख रुपये की उपयोगिता के समान

है या नहीं। उदाहरणवत, क्या उच्च शिक्षा में व्यय किये जाने वाले पैंतीसवें लाख रुपये से जनता की उतनी ही भलाई होगी, जितनी औद्योगिक शिक्षा में पच्चीसवें लाख रुपये खर्च करने से होगी; यदि कम होगी तो उच्च शिक्षा में एक लाख का व्यय घटा कर औद्योगिक शिक्षा में एक लाख का व्यय बढ़ा देना चाहिए, अर्थात् उच्च शिक्षा में ३४ लाख, और औद्योगिक शिक्षा में २६ लाख व्यय करने का विचार किया जाय। इसकी फिर उपर्युक्त दृष्टि से जांच की जाय, यदि उच्चशिक्षा पर खर्च होने वाले चौतीसवें लाख रुपये से जनता की भलाई औद्योगिक शिक्षा पर छब्बीसवें लाख रुपये के व्यय से होने वाली भलाई से कम हो तो उच्च शिक्षा पर एक लाख रुपया और कम करना और औद्योगिक शिक्षा पर एक लाख रुपया और बढ़ाते रहना चाहिए, यहां तक कि दोनों पर खर्च होने वाले अन्तिम एक-एक लाख रुपये से जनता की भलाई समान हो।

यह व्यय की समान उपयोगिता के सिद्धान्त की बात हुई। व्यय के अन्य सिद्धान्तों को समझाने की विशेष आवश्यकता नहीं है; वे स्पष्ट हैं। भारतवर्ष में ये सिद्धान्त कहां तक व्यवहार में पालन किये जाते हैं, इसका विचार भिन्न-भिन्न मदों के सम्बन्ध में प्रसंगानुसार किया जायगा।

ब्रिटिश भारत में केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यय की रकम—ब्रिटिश भारत की केन्द्रीय और सब प्रान्तीय सरकारें प्रति वर्ष कुल मिला कर लगभग तीन सौ करोड़ रुपया विविध साधनों से

वसूल करके विभिन्न कार्यों में खर्च करती हैं। परन्तु साधारणतया यही समझा जाता है कि सरकारी वार्षिक आय तथा व्यय लगभग दो-दो सौ करोड़ रुपये है, सरकारी हिसाब में यही दिखाया जाता है। बात यह है कि रेल, डाक, तार, नहर आदि से जो कुल आय होती है, उसमें से इन कार्यों के प्रबन्ध और संचालन आदि में खर्च होने वाला रुपया निकाल कर हिसाब में विशुद्ध आय ही दिखायी जाती है। इसी प्रकार इन मद्दों के व्यय में, विविध कर्मचारियों के वेतन आदि का खर्च न दिखा कर केवल इन कार्यों में लगी हुई पूंजी का सूद ही दिखाया जाता है।❀

अस्तु, स्थूल दृष्टि से भारतवर्ष की केन्द्रीय तथा सब प्रान्तीय सरकारों का वार्षिक खर्च लगभग दो सौ करोड़ रुपये है। इसमें से १२० करोड़ रुपया तो भारत-सरकार खर्च करती है, और ८० करोड़ रुपया विविध प्रान्तीय सरकारों द्वारा खर्च होता है। केन्द्रीय व्यय में से अधिकांश अर्थात् लगभग ८० प्रतिशत पर व्यवस्थापक सभा का मत नहीं लिया जाता, उसका निर्णय कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल ही करता है। इसी प्रकार विविध प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं को अपने-अपने प्रान्त के खर्च की कितनी ही मद्दों पर तो मत देने का अधिकार ही नहीं है, और शेष मद्दों पर जो अधिकार भी है, वह भी पूर्णतया नहीं है। इस सम्बन्ध में विशेष

❀ उपर्युक्त विविध कार्यों में जो मूलधन लगता है, वह भी खर्च की रकमों में सम्मिलित नहीं किया जाता; अलग दिखाया जाता है।

आगे भारतीय राजस्व-व्यवस्था शीर्षक परिशिष्ट में लिखा जायगा।

अगले अध्यायों में हम सरकारी खर्च की विविध मद्दों पर व्यौरेवार विचार करेंगे, उससे मालूम होगा कि इस समय किस मद पर कम खर्च हो रहा है, और किस पर अधिक; तथा राष्ट्र-हित की दृष्टि से इसमें क्या परिवर्तन किया जाना चाहिए।

तीसरा अध्याय

सेना

"इस तरह भारत की सेना उतनी ही ख़र्चीली है, जितनी कि वह बेकार है; और, इसके द्वारा भारतीय प्रजा को जो लाभ बताया जाता है, वह तो साफ तौर से उसके भारी ख़र्च की तुलना में कुछ भी नहीं है।"

—के० टी० शाह

संसार में गत बीस वर्षों से निरस्त्रीकरण का आन्दोलन हो रहा है। अनेक बड़े-बड़े राज्यों के सूत्रधार समय-समय पर इसका समर्थन करते रहते हैं। इधर, महात्मा गांधी तो मन, वचन और कर्म से अहिन्सा के प्रतिपादक हैं, और भारतवर्ष में तथा

विदेशों में इनके वास्तविक अनुयाइयों की संख्या क्रमशः बढ़ रही है। तथापि मालूम होता है कि अभी संसार के अधिकांश सत्ता-धारी राज-पुरुषों के लिए यह एक अच्छा आदर्श मात्र है, जो अभी सुदूर भविष्य तक व्यवहार्य नहीं। अस्तु, हम यही मान कर चलते हैं कि भारतवर्ष को सेना की, और फल-स्वरूप सैनिक व्यय की आवश्यकता है। परन्तु कहां तक, कितनी आवश्यकता है ?

भारतवर्ष में सेना—भारतवर्ष में कुल स्थायी (रेग्यूलर) सेना में लगभग ढाई लाख सैनिक या अफसर हैं। सन् १८५७ ई० से पूर्व योरपियन सैनिकों की संख्या प्रायः पांचवां हिस्सा होती थी; अब वे एक-तिहाई रहते हैं। ऊंचे पद वाले अफसर अधिकतर अङ्गरेज़ होते हैं। उपर्युक्त स्थायी सेना के अतिरिक्त और भी सेना है जो सहायक या 'आग्ज़िलियरी' कहलाती है, इसमें भारतीय तथा योरपियन होते हैं जो सैनिक शिक्षा पाये हुए, अथवा कुछ समय नौकरी किये हुए होते है। ये अपना निजी कार्य करते है और आवश्यकता होने पर लड़ने के लिए बुला लिये जाते है। भारत-सरकार की सहायता के लिए देशी राज्य भी कुछ सेना अपने खर्च से रखते हैं, इस की शिक्षा आदि ब्रिटिश अफ़सरों की देख-रेख में होती है। यह तो स्थल-सेना की बात हुई। अब जल-सेना की बात लीजिए। अब से कुछ समय पहले तक भारतवर्ष ब्रिटिश सरकार को प्रति वर्ष प्रायः दस लाख रुपये देता था, और ब्रिटिश सरकार भारतवर्ष के सामुद्रिक संरक्षण के लिए जिम्मेदार थी। पर अब भारतीय नौ सेना बनाने की योजना की गयी है। छः जहाज़ों का

जंगी बेड़ा कायम किया गया है, इस का नाम है 'रायल इण्डियन नेवी' अर्थात् भारत की शाही जल सेना।

वायु सेना 'रायल एयर फोर्स' कहलाती है। इस का उपयोग अधिकतर पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त में होता है। हवाई जहाजों में बैठ कर उड़ने की शिक्षा देने के लिये कुछ स्थानों में 'मिलिटरी फ़्लाइङ्ग स्कूल' खोले गये हैं।

सैनिक व्यय——इस व्यय में (क) काम करने वाली (इफ़ेक्टिव), और काम न करने वाली सेना, (ख) समुद्री बेड़ा और (ग) सैनिक मकान आदि का व्यय सम्मिलित है। इन में (क) सम्बन्धी कुछ व्यय भारतवर्ष के अतिरिक्त इङ्गलैंड में भी होता है। भारतवर्ष में व्यय विशेषतया निम्नलिखित विषयों में होता है:—स्थायी सेना, शिक्षा, अस्पताल, डिपो, सेना का सदर मुक़ाम (हेड कार्टर), जल-सेना, हवाई फ़ौज, वायुयान आदि, सहायक और टेरीटोरियल विशेष कार्य-कर्त्ता, स्टाक-हिसाब। सेना सम्बन्धी जो व्यय इङ्गलैड में होता है, वह मुख्यतया इन विषयों में होता है:—भारतवर्ष की ब्रिटिश सेना के कार्य के बदले 'वार आफ़िस' (युद्ध-विभाग) को देने के वास्ते, भारतवर्ष में काम करने वाली ब्रिटिश सेनाओं की यात्रा के समय का वेतन और भत्ता, अफ़सरों की फ़र्लो (अवकाश) का भत्ता, अफ़सरों के परिवार, विवाह आदि का भत्ता, ब्रिटिश सेना से लिये हुए स्टोर के बदले युद्ध-विभाग को देने के वास्ते, ब्रिटिश सेना को कपड़ों का एलाउंस और बेकारी

का बीमा, विनिमय-सम्बन्धी, स्टोर खरीदने के लिए, हवाई फ़ौज, स्टाक-हिसाब आदि।

सैनिक व्यय की वृद्धि—सन् १८५६ ई० में भारतवर्ष का सैनिक-व्यय साढ़े बारह करोड़ रुपये था। अगले वर्ष यहां राज्य-क्रांति हुई, उस के बाद यह व्यय साढ़े चौदह करोड़ रुपये हुआ। सन् १८८५ ई० में यह सत्रह करोड़ हो गया। योरपीय महायुद्ध से पूर्व सन् १९१३-१४ ई० में यह लगभग ३० करोड़ था। यहां तक भी गनीमत थी; महायुद्ध में यह और बढ़ा। सन् १९२१-२२ ई० में यह ७८ करोड़ पर जा पहुँचा। इस वर्ष क़िफायत कमेटी नियत हुई। पश्चात् व्यय कुछ घटा। अब यह लगभग पैंतालीस करोड़ रुपये वार्षिक है।

परन्तु सैनिक व्यय के उपर्युक्त अंकों के सम्बन्ध में अभी एक बात का विचार और करना है। यद्यपि भारत-सरकार अपने ऋण तथा उस के सूद की मद्द में बहुत-सा रुपया अदा कर चुकी है, इस समय भी उस पर लगभग सवा हजार करोड़ रुपये का ऋण है, (इस का विशेष विवेचन आगे एक स्वतंत्र अध्याय में किया जायगा) इस में से तीन सौ करोड़ रुपये का ऋण ऐसा है, जिस के बदले रेलवे आदि की किसी प्रकार की सम्पत्ति नहीं है, और जो सर्वथा अनुत्पादक है। यह ऋण इस लिए लिया गया कि सैनिक व्यय के बहुत भारी होने से, सरकार अपना खर्च प्राप्त आय से नहीं चला सकी। अस्तु, इस ऋण को सैनिक ऋण, और इस पर दिये जाने वाले सूद को सैनिक व्यय का अंग मानना

चाहिए। इसी प्रकार सीमा प्रान्त आदि की जो रेलें सैनिक दृष्टि से बनायी जाती हैं, जिन से आय नाम-मात्र की होती है, और जिन पर खर्च का औसत अन्य रेलों की अपेक्षा कहीं अधिक होता है, उन में होने वाला घाटा भी सैनिक व्यय ही है। इस प्रकार यह सब हिसाब जोड़ने से स्पष्ट है कि सैनिक व्यय की रकम वास्तव में पैंतालीस करोड़ से बहुत ही अधिक है।

इस पर भी विशेषता यह है कि यह कुल खर्च भारतवर्ष में नहीं होता; इस का लगभग २० प्रतिशत इस देश की सीमा से बाहर, इङ्गलैण्ड में खर्च होता है। साथ ही भारतीय जनता के प्रतिनिधियों को इस खर्च पर मत देने की भी व्यवस्था नहीं। यह केन्द्रीय सरकार का सुरक्षित विषय है, और नवीन शासन विधान से तो गवर्नर-जनरल ही इस विषय में सर्वेसर्वा है।

वृद्धि के कारण—सैनिक व्यय की वृद्धि के मुख्य कारण निम्न लिखित है :—

१—जैसा कि पहले कहा गया है, सन् १८५७ ई० के बाद सेना में अंगरेज़ सिपाहियों का अनुपात बढ़ा दिया गया। अंगरेज़ सैनिक भारतीय सैनिकों की अपेक्षा लगभग पांच गुना वेतन पाते हैं। इसके अतिरिक्त उन के इङ्गलैण्ड से आने जाने का खर्च, पेन्शन और कई प्रकार के भत्तों का खर्च भी भारत-सरकार को देना पड़ता है।

२—भारतीय सेना का प्रबन्ध अब इङ्गलैंड के युद्ध-विभाग ('वार-आफिस') से होता है। वह कमेटियों की बैठक और

विनिमय आदि अन्य मदों में भारत-सरकार से प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये लेता है।

३—अंगरेज़ सिपाही यहां थोड़े दिन नौकरी करते हैं, ये भारतवर्ष के व्यय से शिक्षा पाकर ८/१० वर्ष के लिए यहां आते हैं, और पीछे लौट कर जन्म-भर भारतवर्ष से पेन्शन लेते रहते हैं (और ब्रिटिश सरकार की रिज़र्व अर्थात् रक्षित सेना का काम देते हैं)।

४—युद्ध की नयी-नयी आविष्कृत बहु-मूल्य वैज्ञानिक सामग्री से भी सैनिक व्यय बढ़ता रहता है।

५—सन् १८३८ ई० से १९०० तक, भारतवर्ष की सीमा से बाहर, अफ़ग़ानिस्तान, सुडान, चित्राल, तिब्बत, ट्रांसवाल आदि में १२ युद्ध हुए। इन युद्धों से तथा गत महायुद्ध के समय मेसोपोटेमिया और केनिया के युद्ध से ब्रिटिश साम्राज्य की वृद्धि हुई है, फिर भी इन युद्धों के ख़र्च का बड़ा हिस्सा भारतवर्ष को देना पड़ा। गत योरपीय महायुद्ध में भारत से जो सेना इङ्गलैंड की सहायता के लिए गयी थी, उस का खर्च भी भारतवर्ष की आय से दिया गया। इसी प्रकार योरपीय महायुद्ध के समय युद्ध-ऋण में भारतवर्ष से १५० करोड़ रुपये का 'दान' दिया गया। इन ख़र्चों के लिए नियम से पार्लिमेंट की स्वीकृति आवश्यक थी; वह स्वीकृति सहज ही मिल गयी।

६—भारतवर्ष की शाही जल सेना के आयोजन का उल्लेख इसी अध्याय में ऊपर किया जा चुका है। इस में, पहले के दस

लाख रुपये वार्षिक से कितने गुना व्यय होगा, इस का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

भारतवर्ष में सेना का उद्देश्य--सेना के दो उद्देश्य होते हैं :—बाह्य आक्रमणों से रक्षा, और आन्तरिक शान्ति बनाये रखना। भारतीय सेना के विषय में पहले प्रथम उद्देश्य की दृष्टि से विचार करते हैं। भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति स्वयं इस देश की अन्य राज्यों से रक्षा करने में बड़ी सहायक है। भारत-वर्ष के उत्तर, पश्चिमोत्तर और पूर्वोत्तर की पहाड़ी सीमाओं को पार कर के, किसी विदेशी शक्ति का भारतवर्ष में घुसने का प्रयत्न सहसा सफल नहीं हो सकता। फिर, इन सीमाओं से लगी हुई भूमि भी कैसी है ? अफ़ग़ानिस्तान, बिलोचिस्तान, फ़ारस और तिब्बत की ओर भूमि वीरान-सी है, और वर्मा श्याम की ओर दुर्गम जंगल है। ये राज्य कुछ शक्तिशाली नहीं है, और इन सब से मित्रता की संधि है। भूमि की उपर्युक्त कठिनाई के कारण अन्य कोई शक्ति भी इधर से चढ़ाई करने का साहस नहीं कर सकती। भारतवर्ष के दक्षिण, दक्षिण-पूर्व और दक्षिण-पश्चिम में समुद्र ही है, और दूर-दूर तक कोई जल-शक्ति-प्रधान राज्य ऐसा नहीं है जो आक्रमण में सफलता की आशा करे।

भारतीय जनता के सामने समय-समय पर रूस के आक्रमण का हव्वा खड़ा किया जाता है, परन्तु समाजवादी और साम्राज्य-वाद-विरोधी रूस की गति-विधि से परिचित कोई व्यक्ति ऐसी बात का विश्वास नहीं कर सकता।

अब आन्तरिक शान्ति की बात लें। भारतवासी प्रायः शान्त प्रकृति के हैं, फिर अस्सी वर्ष से वे निहत्थे किये हुए हैं। ये भारी उपद्रव कर ही कैसे सकते हैं! और, जाति-गत उपद्रवों को शान्त करने के लिए पुलिस पर्याप्त है। रहे, देशी नरेश। उनमें विद्रोह करने की क्षमता ही नहीं, वरन् विविध अवसरों पर वे तो ब्रिटिश सरकार के पक्ष में ही अपना जन-धन अर्पण करने वाले प्रमाणित हुए हैं।

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों उद्देश्यों के लिए भारतवर्ष में भारी सेना रखने, और उसके लिए भयंकर खर्च करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सैनिक व्यय के समर्थन में यह भी नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष की कुछ सैनिक महत्वाकांक्षा है, यह अन्य भू-भागों को हड़पना चाहता है। प्रथम तो भारतवर्ष अभी स्वयं ही पराधीन है, इस दशा में उस की यह आकांक्षा हो ही नहीं सकती। दूसरे भारतीय सूत्रधार जो इस देश को ब्रिटिश साम्राज्यवाद के पंजे से मुक्त करना चाहते हैं, वे यह स्पष्ट घोषणा कर चुके हैं कि भारतीय स्वतंत्रता और बल-वृद्धि का उपयोग दूसरों को पराधीन बनाने में न किया जायगा; वे तो सब की स्वतंत्रता के समर्थक हैं।

तो फिर यहाँ यह विकराल सेना, और भयंकर सैनिक व्यय क्यों, जिससे अन्य राष्ट्र व्यर्थ में हमें आशंका की दृष्टि से देखते हैं? इसका एक ही उत्तर है। भारतवर्ष की सेना का उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा में सहायता करना है। ईशर कमेटी तथा अन्य

अधिकारी इस बात को स्वीकार कर चुके हैं। स्वयं श्री० रेमसे-मेग्डोनल्ड का यह कथन है कि "भारत में जितनी सेना रहा करती है, उसका बहुत बड़ा भाग—आधे में तो कोई सन्देह ही नहीं है—साम्राज्य की सेना है जिसे हमें शुद्ध भारत के काम के लिए नहीं, बल्कि अन्य अभिप्राय: से रखने की आवश्यकता है। इसलिए उसका खर्च भारतीय आमदनी से नहीं लेना चाहिए; वरन् साम्राज्य से मिलना चाहिए।" साफ बात तो यह है कि भारतवर्ष में इतनी बड़ी सेना रखने, उसमें अंगरेज़ अफसरों का निर्धारित परिमाण रखने, और उसका संचालन भारतीय लोकमत के अनुसार न कर, भारत-मंत्री के निरीक्षण और नियंत्रण में रखने का उद्देश्य यह है कि भारतवर्ष अपनी पराधीनता से मुक्ति न पा सके। वह अन्य राष्ट्रों से रक्षा चाहते हुए कभी ब्रिटिश छत्र-छाया से अलग होने की कल्पना न करे। ब्रिटिश अधिकारियों की दृष्टि से भारत की रक्षा का आशय यही है, अन्य राष्ट्रों से रक्षा, और इङ्गलैंड की दासता। सोचने की बात है कि एक ओर तो कई दशाब्दियों के भारतीय आन्दोलन के पश्चात् भी यहाँ सेना कहने भर को भारतीय है, इसका समुचित भारतीयकरण नहीं किया जा रहा है, अथवा यों कहना चाहिए कि ब्रिटिश अधिकारी इस दिशा में जो कार्य करते हैं, उसकी रफ्तार से निकट भविष्य में भारतीयों की इच्छा पूरी होती नहीं दीखती; फिर भी ब्रिटिश अधिकारी भारतवासियों की स्वराज्य सम्बन्धी अयोग्यताओं में से एक यह बताया करते हैं कि भारतवर्ष सैनिक दृष्टि से स्वावलम्बी नहीं है।

सैनिक व्यय घटाने के उपाय—सेना सम्बन्धी वर्तमान भयंकर व्यय को घटाने के मुख्य उपाय निम्नलिखित हैं:—

१—भारतीय सेना का सम्पूर्ण प्रबन्ध भारत-सरकार के हाथ में दिया जाय, और भारतीय व्यवस्थापक-सभा के मतानुसार इस विभाग का व्यय निश्चय हुआ करे। इस समय ब्रिटिश युद्ध-विभाग मन-माना खर्च भारत-सरकार पर डाल देता है; यह बन्द होना चाहिए।

२—अँग्रेज़ सैनिक जितने दिन यहाँ नौकरी करें, उतने दिन का उचित वेतन उन्हें दिया जाय, उनकी शिक्षा के व्यय का भार ब्रिटिश-सरकार अपने ऊपर ले, क्योंकि उनका अधिकांश लाभ उसे ही मिलता है। अँगरेज़ सैनिकों के भत्ते और पेन्शन में यथेष्ठ कमी की जाय।

३—सेना का भारतीयकरण हो अर्थात् खर्चीला ब्रिटिश भाग क्रमशः हटा करके उसके स्थान में वीर, देश-प्रेमी भारत-संतान को भरती किया जाय। भारतवासियों की सैनिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था हो, जिससे समय पर स्वदेशवासी स्वयं अपनी रक्षा कर सकें; स्थायी सेना यथाशक्ति कम रखनी पड़े।

४—सैनिक स्टोर, सामग्री, संग्रहालय (डिपो) निर्माण-कार्य आदि में किफ़ायत की जाय। यथा-संभव सब सामान भारतवर्ष में ही तैयार कराया और खरीदा जाय।

५—सैनिक व्यय में जनता की भलाई की दृष्टि से समान

उपयोगिता के सिद्धान्त का विचार रखा जाय, जिसके विषय में, पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है।*

६—सेना उतनी ही रखी जाय, जितनी भारतवर्ष के लिए आवश्यक है। वर्तमान अवस्था में सेना का अधिकांश भाग इस उद्देश्य से रखा जाता है कि उससे ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा या वृद्धि में सहायता मिले, इसलिए सैनिक व्यय का भी अधिकांश भाग ब्रिटिश कोष से दिया जाना चाहिए।

पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष में सैनिक व्यय बहुत ही अधिक होने के कारण अन्य लोकोपयोगी कार्यों के लिए धन की चिन्तनीय कमी रहती है। अतः यह आवश्यक है कि उपर्युक्त उपायों से सैनिक व्यय शीघ्र ही काफी घटाया जाय।

———

* समान उपयोगिता के सिद्धान्त का विचार सैनिक व्यय के विविध भागों में भी रहना चाहिए। भविष्य में स्थल या जल की अपेक्षा आकाश में युद्ध होने की सम्भावनाः अधिक है। अतः स्थल सेना या जल सेना के व्यय में कमी करके आकाश-युद्ध-सामग्री में अधिक व्यय करना चाहिए, जिससे सेना की कार्य-क्षमता बढ़े।

चौथा अध्याय

शासन-प्रबन्ध

"यह तो मानना ही पड़ेगा कि भारतीय सरकार बड़ी खर्चीली है। विदेशी राज्य चाहे अपनी कीमत के लायक भी समझा जाय तो भी सदा मंहगा ही होता है।"
—जे० आर० मेग्डोनल्ड

शासन-व्यय—यह मद केन्द्रीय भी है, और प्रान्तीय भी। इस मद के केन्द्रीय भाग में निम्नलिखित व्यय सम्मिलित होता है:—गवर्नर-जनरल, तथा भारत-सरकार के सदस्यों, भारतीय व्यवस्थापक-सभा और राज्य परिषद्-सम्बन्धी खर्च, केंद्रीय सेक्रेटेरियट और हेड-क्वार्टरों के आफिस का खर्च, बंदरगाहों, हवाई जहाजों, स्वदेश (होम) विभाग, राजनैतिक विभाग, तथा हिसाब की जांच सम्बन्धी खर्च, चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों* में होने वाला (चीफ कमिश्नरों, जिलाधीशों, और उन के अधीन कर्मचारियों, पुलिस, न्याय, और जेल, विज्ञान, शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, कृषि और उद्योग-धंधे सम्बन्धी) खर्च। इस मद के प्रान्तीय भाग में निम्नलिखित व्यय सम्मिलित होते हैं—गवर्नरों और उनके मंत्रियों का वेतन और दौरे आदि का खर्च, प्रान्तीय

* (१) देहली, (२) अजमेर-मेरवाड़ा, (३) कुर्ग, (४) अन्दमान-निकोबार, (५) ब्रिटिश बिलोचिस्तान, और (६) पंथ पिपलोदा।

व्यवस्थापक मंडलों सम्बन्धी खर्चा, प्रान्तीय सेक्रेटेरियट, रेवन्यू बोर्ड, कमिश्नरों, कलेक्टरों और उन के सहायकों तथा तहसीलदारों और उनके अधीन कर्मचारियों का वेतन और आफ़िस खर्चा, हिसाब की जांच सम्बन्धी खर्चा।

केन्द्रीय शासन में प्रतिवर्ष लगभग नौ करोड़ और प्रान्तों के शासन में प्रायः बारह करोड़ रुपये खर्च होता है।

केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों की नीति में अन्तर—शासन-व्यय के सम्बन्ध में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारों में, विशेषतया जहाँ कांग्रेसी सरकारें हैं,* बहुत अन्तर है। यों तो नवीन विधान के अनुसार प्रान्तीय सरकारों के अधिकार बहुत परिमित ही हैं और वे शासन-व्यय में यथेष्ट मितव्ययिता नहीं कर सकतीं, तथापि वे इस दिशा में यथा-सम्भव प्रयत्नशील हैं। कारण, एक तो वे जनता के प्रति उत्तरदायी हैं, दूसरे कांग्रेस कार्यकर्ता जनता के दुःख-दर्द और दारिद्रय से पूर्णतः परिचित हैं; वे जनता के ही आदमी हैं, इस लिए जहाँ तक कानून

---

* कांग्रेस सरकारें निम्नलिखित सात प्रान्तों में हैं—(१) बम्बई, (२) मदरास, (३) बिहार, (४) उड़ीसा, (५) संयुक्त प्रान्त, (६) मध्य प्रान्त और बरार, तथा (७) पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त। गवर्नरों के प्रान्तों में से शेष चार में गैर-कांग्रेसी सरकारें हैं ये प्रान्त निम्नलिखित हैं—(क) बंगाल, (ख) पंजाब, (ग) सिंध और (घ) आसाम।

उन्हें अनुमति देता है, वे जनता के पैसे को खूब सोच-समझ कर खर्च करते हैं।

कांग्रेसी सरकारें मितव्ययिता के विविध उपायों का विचार करने में लगी है। उदाहरणवत् बिहार सरकार ने एक किफायत कमेटी बनायी थी। मालूम हुआ है कि अन्यान्य बातों में, कमेटी ने सिफारिश की है कि सरकार भारत-मंत्री से कहे कि वे गवर्नर, हाई कोर्ट के चीफ-जस्टिस तथा जजों का वेतन घटवाएं। कमेटी की राय में सिविल सर्विस तथा अन्य शाही नौकरियों की प्रांतीय शासन के लिए कोई ज़रूरत नहीं है। सरकार को इस सिलसिले में उचित कार्यवाही करनी चाहिए। इन नौकरियों में जो अब नये व्यक्ति भरती किये जायँ, उनकी तनखाहें कम से शुरू की जायँ। प्रान्तीय नौकरियों के सम्बन्ध में वेतन सम्बन्धी जो सिफारिश की गयी है, वह शाही नौकरियों के लिए भी हैं। प्रांतीय नौकरियों के सम्बन्ध में कमेटी का विचार है कि १ अप्रैल १९३८ के बाद से जो नियुक्तियाँ हुई हैं, उनका वेतन घटा दिया जाय। पुलिस विभाग के सम्बन्ध में कमेटी का कहना है कि इस महकमे में जो व्यक्ति १०० रु० से कम तनख्वाह पाते हैं, उन की तनख्वाह में कमी करना सम्भव नहीं है, पर अफसरों के भरती किये जाने के नियम में कुछ रद्दोबदल सम्भव है, जैसे तरक्की दे कर दरोगा के पद के लिए भरती करना चाहिए। दारोगा को तरक्की दे कर उसे डिप्टी सुपरिन्टेन्डेन्ट बनाया जा सकता है। कुछ अफसरों के वेतन की

ऊपरी सीमा के सिलसिले में कमेटी ने अपना मत प्रकट किया है। कमेटी ने सिफारिश की है कि ऊंचे वेतन वाले कुछ अफसरों का पद तोड़ दिया जाय।

इससे प्रान्तीय सरकारों की मितव्ययिता सम्बन्धी नीति का अच्छा परिचय मिल जाता है। प्रान्तों में प्रजातंत्रात्मक शासन स्थापित हो जाने से, तथा प्रान्तीय सरकारों के अधिकार बहुत परिमित होते हुए भी लोकोपयोगी कार्यों का मार्ग प्रशस्त करने में लगे रहने से, यह आशा होती थी, कि केन्द्रीय सरकार भी अपना रंग-ढंग सुधारेगी और लोकमत से प्रभावित होकर तथा परिस्थिति का विचार कर कुछ मिव्ययिता से काम लेगी। परन्तु उसने केन्द्रीय व्यय में कुछ कमी नहीं की। उसकी फजूलखर्ची ने लोगों की उपर्युक्त आशा पर पानी फेर दिया है। वह अपने अधीन उच्च पदाधिकारियों को (जो प्रायः अँगरेज़ होते हैं) खूब वेतन और भारी भत्ता देती है, और नये-नये पदों की सृष्टि करती रहती है। समय समय पर, लोक-मत की नितान्त अवहेलना करते हुए भी बाहर से विशेषज्ञों को बुलाने की नीति काम में लाती है, और इन विशेषज्ञों को अनेक दशाओं में, जितना वेतन आदि उनके देश में मिलता या मिल सकता है, उसकी अपेक्षा कई गुना अधिक यहाँ के खजाने से देती है।

विशेष वक्तव्य—शासन-व्यय का एक बड़ा भाग सरकारी नौकरों के वेतन, भत्ते और पेन्शन आदि में खर्च होता है। परन्तु

सरकारी नौकरियों का सम्बन्ध शासन-व्यय के अतिरिक्त, इस पुस्तक के अन्य विषयों से भी है। अतः उन के विषय में हम स्वतंत्र रूप से, अगले अध्याय में विचार करेंगे।

पाँचवाँ अध्याय

सरकारी नौकरियाँ

"हर जगह व्यवहार में यही बात देखी जाती है कि हुकूमत की बाग-डोर ऐसे योरपीय कर्मचारियों के हाथ में है, जो इस बात के लिए उत्सुक रहते हैं कि कब मौका मिले और हम अपने घर जाकर मौज उड़ावें।...... जिन के ऊपर वह हुकूमत करते हैं, उन की भलाई में उन्हें कोई रस नहीं है, और न यहाँ की प्रजा के सामने उन्हें कोई जवाबदेही करनी पड़ती है।.......... इस देश की सन्तान जो पहले यहाँ हुकूमत करती थी, वही आज थोड़ी-थोड़ी तनख़्वाहों पर उन की मातहती में कलर्की कर रही है।"

—जे० सी० कुमारप्पा

सरकार के विविध विभागों का कार्य संचालन करने के लिए, अनेक कर्मचारी होते हैं। इस अध्याय में यह विचार करना है कि है कि क्या भारतवर्ष में सरकारी नौकरों को मिलने वाला वेतन यहाँ की आर्थिक स्थिति के अनुरूप है; क्या वह अन्य देशों की तुलना

४

से उचित प्रतीत होता है; जैसा वेतन उच्च अधिकारियों को मिलता है, क्या उस अनुपात में निचले कर्मचारियों को भी मिलता है; सरकारी नौकरों की और सर्वसाधारण की आय में ऐसी विषमता तो नहीं है, जिसका परिणाम देश के लिए अहित-कर होता हो; एवं सरकारी नौकरों पर भारतीय जनता के प्रति-निधियों को कहाँ तक नियंत्रण है।

उच्च अधिकारियों का अत्यधिक वेतन—भारतवर्ष के सरकारी नौकरों के वेतन के बारे में यह बात सर्व-विदित है कि यहाँ उच्च अधिकारियों को इतना वेतन मिलता है जितना संसार के अनेक धनी देशों में भी नहीं मिलता। भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल का वार्षिक वेतन २,५०,८००) रु० है, जब कि ब्रिटिश साम्राज्य के प्रधान मंत्री का वेतन केवल ५००० पौंड अर्थात् ७५,०००) रु० है।* फिर, कहाँ इंगलैंड की आर्थिक स्मृद्धि और कहाँ भारतवर्ष की दरिद्रता!

गवर्नर-जनरल से नीचे उतर कर भिन्न-भिन्न पद वालों को वार्षिक वेतन क्रमशः कम मिलता है। कुछ उदाहरण लीजिए—

---

* गवर्नर-जनरल के अलाउन्स या भत्ते की रकमें तो और भी चकित करने वाली हैं। व्यय-प्रबन्ध सम्बन्धी भत्ता, कन्ट्रैक्ट अलाउंस, स्टाफ और खानदान का भत्ता, दौरे का भत्ता, बैंड, शरीर-रक्षक, और व्यक्तिगत स्टाफ आदि का खर्च मिला कर उसकी वेतन १७,१८,६००) रु० प्रति वर्ष हो जाती है।

गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी कौंसिल के मेम्बर, प्रत्येक	८०,०००)
कमांडरन चीफ (जंगी लाट)	१,००,०००)
गवर्नर	६६,०००) से १,२०,०००) तक
चीफ़-कमिश्नर	३६,०००)

निम्न-श्रेणी के अनेक सरकारी नौकर तो प्रति वर्ष केवल डेढ़ सौ रुपये पाते हैं। इस प्रकार गवर्नर-जनरल का वेतन इन कर्मचारियों की अपेक्षा सोलह सौ गुने से अधिक है। भारतवासियों की औसत आमदनी यदि अस्सी रुपये साल भी मानी जाय तो तीन हजार व्यक्तियों की समस्त आय अकेले गवर्नर-जनरल की वेतन चुकाने में ही चली जाती है। इस औसत में ऐसे व्यक्ति भी सम्मिलित हैं: जिनकी आय इससे कम है, अथवा कुछ भी नहीं है, उनसे गवर्नर-जनरल की तुलना क्या की जाय! यही बात, कुछ कम परिमाण में, अन्य उच्च पदाधिकारियों के विषय में कही जा सकती है, जिनकी नियुक्ति, वेतन-निर्धारण, और नियंत्रण भारतमंत्री या सम्राट द्वारा होता है। इनका वेतन क़ानून से निर्धारित है, उसमें केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल कुछ कमी नहीं कर सकता। अतः इस मद में कुछ वास्तविक कमी तभी हो सकती है, जब विधान में यथेष्ट परिवर्तन हो।

उच्च पदाधिकारी अधिकाँश में अंगरेज़—वास्तव में भारतवर्ष में उच्च सरकारी पदों पर जो नियुक्तियाँ होती हैं, उन

पर भारतीय लोक-प्रतिनिधियों का कोई नियंत्रण नहीं है, और वे भारतवर्ष की आर्थिक परिस्थिति का विचार करके नहीं की जातीं। यद्यपि यहाँ कितने ही वर्षों से नौकरियों के भारतीय-करण का आन्दोलन चल रहा है, इस समय भी अधिकांश उच्च पदों पर अंगरेज ही नियुक्त हैं। यही नहीं, वे पद अंगरेजों के लिए ही सुरक्षित है। क्या यह जातीय पक्षपात नहीं है? गवर्नर-जनरल की तो बात ही क्या, गवर्नर का पद प्राप्त करने का भी कोई भारतवासी सहज ही स्वप्न नहीं देख सकता। अंगरेज़ों के शासन के इतने समय में भी एक अपवाद को छोड़ कर किसी भारतवासी को इस पद के योग्य नहीं समझा गया। यद्यपि समय-समय पर ब्रिटिश अधिकारियों ने भारतवासियों की योग्यता की प्रशंसा की है, परन्तु जैसा कि व्यवहार में देखने में आया है, यदि भारतवासी अंगरेज़ों के शासन में अपने देश के प्रबन्ध-सम्बन्धी उच्चपद प्राप्त करने की योग्यता प्राप्त नहीं कर सके हैं तो यह ब्रिटिश शासकों के लिए बहुत चिन्त-नीय ही है।

प्रान्तीय सरकारों के अधिकारों की न्यूनता—सन् १९३५ ई० के विधान से यहाँ प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गयी, बतायी जाती है, परन्तु भारतीय सिविल सर्विस, भारतीय पुलिस सर्विस और भारतीय मेडिकल सर्विस के लिए नियुक्ति और नियंत्रण भारतमंत्री ही करते हैं। यहां की प्रान्तीय सरकारों को इन अधिकारियों से काम लेना होता है, परन्तु न तो वे इनकी

नियुक्ति कर सकती हैं, न इनका वेतन निर्धारित कर सकती हैं, और न इन्हें किसी प्रकार का दंड ही दे सकती हैं। प्रान्तीय सरकारों की यह कैसी स्वतंत्रता है!

सम्भवतः ब्रिटिश अधिकारियों को यह आशंका है कि यदि उपर्युक्त नौकरियों के अनुशासन का अधिकार प्रान्तीय सरकारों को दे दिया जाय तो फिर अंगरेजों को इतनी जगहें न मिलेंगी, और न उन्हें पेन्शन, या भत्ते आदि के रूप में ऐसी बड़ी-बड़ी रकमें मिल सकेंगी, जैसे अब तक मिलती रही हैं, और इस समय मिल रही हैं। परन्तु, भारतवर्ष के सरकारी पदों पर विदेशियों का बोलबाला कब तक रहेगा? भारतवर्ष में हजारों आदमी विद्यमान हैं, जो योग्यता और शिक्षा में अंगरेजों से कम न होकर, उनसे कहीं कम वेतन पर संतोष एवं परिश्रम पूर्वक देश-सेवा कर सकते हैं। अब प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना होने पर भी उन्हें बेकार मारे-मारे फिरने देना, और विदेशियों को भारी-भारी वेतन, पेन्शन और भत्तों तथा छुट्टियों का लोभ देकर यहाँ बुलाना उपहास, मूर्खता एवं जातीय पक्षपात की बात है। इसका जितना जल्दी अन्त किया जाय, अच्छा है।

प्रान्तीय पदों को प्रान्तीय सरकारों के अधीन करने से लाभ—उपर्युक्त नौकरियों को प्रान्तीय सरकारों के अधीन कर देने से केवल यही लाभ न होगा कि उन नौकरियों के लिए योग्यतानुसार भारतवासियों का उपयोग हो सकेगा, वरन् अन्य

लाभ भी होंगे। इससे सरकारी खर्च में काफ़ी बचत होगी। इस बचत का उपयोग दो प्रकार से हो सकेगा। एक तो निम्न कर्मचारियों की वेतन बढ़ाने में, जिससे, उनका भरण-पोषण अच्छी तरह हो सके, और उनके तथा उच्च पदाधिकारियों के वेतन में ऐसा विषम अनुपात न रहे, जैसा कि इस समय है, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। दूसरे, प्रान्तों में ऐसे लोकोपकारी कार्य करने में, जिनसे जनता की शिक्षा और स्वास्थ्य में वृद्धि हो तथा उसकी बेकारी दूर होकर आर्थिक उन्नति हो। नौकरियों के प्रान्तीयकरण से एक अन्य बड़ा लाभ यह होगा कि यहां का शासन-प्रबन्ध अधिक उत्तमता और कार्यक्षमता से संचालित होगा। विदेशी नौकर यहाँ की परिस्थिति, रीति व्यवहार, भाषा आदि से अनभिज्ञ होते हैं, उनकी भक्ति-भावना अन्य (उनके) देश के प्रति होती है, वे यहाँ उतने उपयोगी कदापि नहीं हो सकते, जैसे यहाँ के जन्मे और शिक्षा-दीक्षा पाये हुए भारतीय हो सकते हैं।

नियुक्तियों का सिद्धान्त—सरकारी पदों पर नियुक्तियां करने में यह ध्यान रखा जाना आवश्यक है कि किस कार्य के लिए कैसी योग्यता के आदमी की आवश्यकता है, और उस योग्यता का आदमी कितने वेतन पर मिल सकता है। जिन कार्यों के लिए स्वदेश में ही योग्य आदमी मिल सकें, उनके वास्ते बाहर के आदमी नियुक्त करना सर्वथा अनुचित है, चाहे वे यहां

वालों की अपेक्षा वेतन कुछ कम भी लेना स्वीकार करें।* परन्तु भारतवर्ष में इसके विपरीत ही कार्य हो रहा है। एक तो यहां के आदमियों की अवहेलना कर के विदेशियों की नियुक्ति की जाती है, दूसरे उन्हें वेतन भी यहां वालों की अपेक्षा कहीं अधिक दिया जाता है। अनेक सिविलियन केवल फाइलों पर हस्ताक्षर करते हैं और अपने से नीचे के कार्यकर्ताओं पर रौब जमाते हैं, और इतने-से कार्य के लिए खूब भारी-भारी वेतन पाते हैं। ब्रिटिश सरकार ने कितने ही पदों की सृष्टि इस लिए कर रखी है कि यहाँ के रुपये से सिविलियन खूब आराम से रहें और मौज उड़ावें। ब्रिटिश सरकार के इस व्यवहार को राष्ट्रीय सरकार कदापि सहन नहीं कर सकती। क्योंकि अब प्रान्तों में प्रजातंत्र शासन स्थापित हो गया है, और अधिकाँश प्रान्तों में कांग्रेस सरकार हैं जो कि प्रजा से प्राप्त आय को यथासम्भव मितव्ययिता से खर्च करती हैं, पूर्वोक्त स्थिति और भी अधिक असंतोषप्रद हो रही है। आवश्यकता है कि इन के वेतन में कम से कम आधी कमी तो अवश्य कर दी जाय।

साथ ही, इन की संख्या में भी बहुत कमी होने की आवश्यकता

---

* विदेशियों को जो वेतन मिलता है, उसका थोड़ा-सा भाग यहाँ खर्च होकर शेष रुपया विदेश चला जाता है, उससे यहाँ के उद्योग-धन्धों या व्यापार आदि को सहायता नहीं मिलती। विदेशी यहाँ भी जो रुपया खर्च करते हैं, उसका बहुत-सा भाग विदेशी वस्तुओं के लिए दिया जाता है।

है। उदाहरणवत् जेलों के लिए सुपरिंटैंडैंट आई. एम. एस रखने की कोई ज़रूरत नहीं है, जब कि जेलों में डाक्टरी सहायता के लिए अलग डाक्टरों की व्यवस्था है। जिन बिभागों को मिला कर इकट्ठा चलाया जा सके उन्हें अलग-अलग रख कर, अनेक पदाधिकारियों को नाम-मात्र के कार्य के लिए वेतनादि देना सर्वथा अनुचित है। उदाहरणार्थ, मदरास प्रान्त में कमिश्नरों बिना भी काम बरावर चल रहा है तो अन्य प्रान्तों में ही इन के रखे जाने की क्या आवश्यकता है! हर्ष की बात है कि प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारें इस ओर ध्यान दे रही हैं।

कितने ही ग़ैर-सिविलियन अधिकारी भी अनावश्यक हैं, तथा बहुत अधिक वेतन पाने वाले हैं। अच्छी तरह जाँच करके अनावश्यक अधिकारियों को हटा दिया जाना चाहिए, और प्रत्येक अधिकारी की वेतन निश्चित करने में उन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए, जिन का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

कांग्रेस का प्रस्ताव—यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि कांग्रेस ने यह प्रस्ताव किया हुआ है कि यहाँ साधारण-तया किसी नौकरी की अधिक-से-अधिक मासिक वेतन ५००) रु० हो। आरम्भ में बहुत-से आदमियों ने इस का उपहास तथा आलोचना की। परन्तु समय आया, कांग्रेस ने अपनी बात को क्रियात्मक रूप दे कर दिखा दिया। इस समय सात प्रान्तों में कांग्रेसवादी सज्जन मंत्री-पदों पर नियुक्त हैं, और केवल पांच-पांच सौ रुपये मासिक ले रहे हैं। इनकी योग्यता किसी भी सिविल

पदाधिकारी से कम नहीं है। इन्हों ने इतने वेतन पर काम करके प्रमाणित कर दिया है कि कांग्रेस का प्रस्ताव उत्तरदायित्व-युक्त एवं व्यावहारिक है। कहना नहीं होगा कि यह प्रस्ताव भारत-वासियों की वर्तमान परिस्थिति के सर्वथा अनुरूप है, और जिन व्यक्तियों को किसी कारण अधिक वेतन मिल रहा है, उन्हें स्वेच्छा-पूर्वक अपनी अधिक आय का परित्याग करना चाहिए। यदि वे लोभ-वश वैसा नहीं कर सकते तो यथेष्ट क़ानून बना कर उन्हें इसके लिए बाध्य किया जाना चाहिए।

पेन्शन—पेन्शन सेवा करने के उपलक्ष्य में दी जाती है, और एक प्रकार से वेतन का ही रूप है। किसी नौकरी में पेन्शन की व्यवस्था होने से, कर्मचारी उस पर जम कर काम करता है, और सहसा उसे छोड़ कर अन्यत्र भटकता नहीं रहता। परन्तु यह उन्हीं कर्मचारियों को दी जानी चाहिए, जो साधारण वेतन पर, और काफ़ी समय तक काम करें। भारतवर्ष में अनेक ऐसे सिविलयनों तथा अन्य पदाधिकारियों को भी भारी-भारी पेन्शन दी जाती है, जो थोड़े समय ही नौकरी करते हैं, तथा जिन्हें नौकरी के समय काफी ही नहीं, काफ़ी से ज्यादह वेतन और भत्ता आदि दिया जाता है।

पेन्शनों के सम्बन्ध में विशेष चिन्तनीय बात यह है कि इनमें खर्च होने वाली रक़म का खासा बड़ा भाग विदेशी कर्म-चारियों को दिया जाता है और इस प्रकार देश से बाहर चला जाता है, उससे यहां वालों का कोई हित नहीं होता, जैसा कि उस

दशा में होता, जब कि पेन्शन पाने वाला यहां का ही निवासी होता और अपनी आय को यहां हो विविध प्रकार की वस्तुएं खरीदने, या अन्य व्यक्तियों की सेवाएँ लेने में खर्च करता। पेन्शनों के सम्बन्ध में श्री० मेग्डोनल्ड ने लिखा है, "विदेशी सरकार के अधीन यह वह खर्च है, जिनके बदले में एक पाई भी वसूल होने वाली नहीं है। यह खर्च दोहरी चिन्ता के कारण हैं, क्योंकि यह केवल भारत की आय से ही पृथक् नहीं किये जाते, वरन् बाहर निकाल दिये जाते हैं।......जब देश के बाहर जाने वाला धन इतना अधिक है तो सुख स्मृद्धि नहीं हो सकती।" अस्तु, पेन्शन सम्बन्धी अधिकाँश खर्च ऐसा है, जो बन्द कर दिया जाना चाहिए।

भत्ता—अब भत्ते की बात लें। सरकारी नौकरों के भत्ते में भी बहुत अधिक रुपया खर्च होता है। कितने ही बड़े-बड़े अफसर केवल भत्ते के लोभ से बार-बार दौरा करते हैं, और भत्ते सम्बन्धी नियमों से अनुचित लाभ उठाते हैं। यदि एक ही दिशा के तीन-चार स्थानों में जाना है, तो एक-साथ सब जगह न जाकर, एक बार में एक जगह जाते हैं, और बीच में अपने सदर मुकाम पर उपस्थित हो कर तथा किसी दूसरी तरफ का दौरा करके, फिर पहली दिशा का दौरा करते हैं। कितने ही आदमी तरह-तरह की चालबाजियों से अपने भत्ते के बड़े-बड़े बिल पास कराने में सफल हो जाते हैं। ऐसे सब खर्च को रोकने के लिए यथेष्ट व्यवस्था होनी चाहिए।

छठा अध्याय

पुलिस, न्याय और जेल

"पुलिस जनता की सेवक, न्याय सस्ता, और जेल सुधारक होना चाहिए।"

—लेखक.

पुलिस-सम्बन्धी व्यय—पुलिस, न्याय और जेल ये तीनों मदें प्रान्तीय हैं। इन में से पहले हम पुलिस-सम्बन्धी खर्च का विचार करते हैं। इस में निम्न लिखित व्यय सम्मिलित है :—(क) इन्सपेक्टर-जनरल, डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल इत्यादि बड़े-बड़े अफसरों का, तथा जिला-सुपरिन्टेन्डेन्ट, उन के अधीन कर्मचारी, और पुलिस के सिपाहियों आदि का वेतन, और आफिस-खर्च, (ख) खुफिया विभाग (सी० आई० डी) का खर्च, (ग) गावों की पुलिस का खर्च, (घ) रेलवे पुलिस का खर्च।

वेतन के सम्बन्ध में पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है। गत वर्षों में केन्द्रीय सरकार की भांति प्रान्तीय सरकारों का और जनता का पारस्परिक सम्बन्ध सन्तोषप्रद नहीं था। अधिकतर पुलिस वाले अपने आप को जनता का सेवक न मान कर, लोगों पर अपना रौब गांठते थे। अब प्रान्तों में जनता की ही सरकार

होने से उपर्युक्त स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया है। जब कि स्वयं मन्त्री तक अपने आप को जनता का सेवक कहते और समझते हैं, तो उन के अधीनस्थ पुलिस के अधिकारियों का जनता के प्रति अच्छा व्यवहार होना स्वाभाविक ही है। कांग्रेसी सरकारों ने यह सूचना दे दी है, कि सार्वजनिक सभाओं में वक्ताओं के भाषण नोट करने के लिए खुफिया पुलिस वालों के जाने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार उन का काम कम होने से उन की संख्या तथा उन के लिए होने वाले खर्च में भी कमी हो रही है। प्रान्तीय सरकारें इस बात की ओर भी ध्यान दे रही हैं कि अन्य पुलिस कर्मचारी भी संख्या में यथा-सम्भव कम हों, पर हों अधिक योग्य, शिक्षित और सभ्य। वे यह प्रयत्न कर रही हैं कि उच्च पदाधिकारियों का वेतन कुछ कम कर के, भारतवासियों की अधिकाधिक नियुक्ति करें, और इस प्रकार कुल मिला कर इस मद का खर्च घटावें।

गावों की पुलिस के खर्च के सम्बन्ध में खर्च बहुत अधिक घटने की सम्भावना नहीं है, उसका अधिकाँश भाग चौकीदार का वेतन होता है, जो कम ही है।

न्याय—इस मद में निम्नलिखित व्यय सम्मिलित हैं:—हाईकोर्ट, ऐडवोकेट-जनरल, जूडीशल कमिश्नर, दीवानी और सेशन कोर्ट, (जिला और सेशन जज, सबार्डिनेट जज, मुंसिफ़, मुहाफ़िज़ दफ़्तर, और अन्य कर्मचारी) और अदालत ख़फ़ीफ़ा का खर्च।

हाईकोर्ट के जजों के वेतन और भत्ते आदि को छोड़ कर, न्याय-सम्बन्धी खर्च प्रान्तीय सरकारों के अधीन है, और वे, विशेषतया कांग्रेस सरकारें इस में यथा-सम्भव मितव्ययिता कर रही हैं। यद्यपि आनरेरी (अवैतनिक) मजिस्ट्रेट पहले भी होते थे, परन्तु अनेक दशाओं में अधिकारियों के कृपा-पात्र होने के अतिरिक्त उन में न्याय-कार्य सम्पादन करने की कुछ योग्यता न होती थी। अब संयुक्त प्रान्त आदि में जिन व्यक्तियों को इन पदों पर नियुक्त किया गया है, उन की शिक्षा, योग्यता आदि का समुचित विचार रखा गया है। इस प्रकार इस विभाग का खर्च बढ़ाए बिना भी कार्य-क्षमता बढ़ाई जा रही है।

गावों के छोटे-छोटे मामलों का फ़ैसला करने आदि के लिए ग्राम-पंचायतों की भी अधिकाधिक स्थापना हो रही है, पंचों की नियुक्ति में उन की इस कार्य सम्बन्धी योग्यता का लिहाज़ रखा जाता है। पंचायतों से विशेष लाभ यह है कि पंच स्थानीय व्यक्ति होने से मामले मुकद्दमे के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी रखते हैं, और इस लिए न्याय अच्छा कर सकते हैं। क्योंकि पंचायतों में वकील लोग पैरवी नहीं करते, अतः इन के द्वारा मुकद्दमे का फ़ैसला कराने में लोगों का खर्च भी कम होता है।

जेल-विभाग—इस मद में जेल-प्रबन्ध, तथा जेलों के सामान-सम्बन्धी खर्च सम्मिलित है। जेलों के प्रबन्ध-व्यय में इन्सपेक्टर-जनरल और उन के दफ़्तर आदि, सेन्ट्रल जेल, ज़िला

जेल, हवालात, जेल सम्बन्धी पुलिस, जरायम पेशा जातियों के सुधारार्थ किया हुआ व्यय, और कैदियों के जेल से छूटने पर उन्हें निर्वाहार्थ दिया हुआ रुपया शामिल है। जेलों के सामान में क़ैदियों के वास्ते लिया हुआ खाद्य-पदार्थ खरीदने में तथा जेल के कारख़ानों में काम करने वाले नौकर, क्लर्क, आदि के वेतन में, तथा पत्र-व्यवहार आदि में होने वाला ख़र्च गिना जाता है।

इस समय तक भारतवर्ष के जेलों में नागरिकों का जीवन सुधरने के बजाय बिगड़ता ही रहा है। साधारणतया जो आदमी एक बार किसी सच्चे या झूठे अपराध में क़ैद रह आया, वह वहां के दमन और पाशविक व्यवहार के कारण, अधिकाधिक अपराधी ही बन कर आया। पुनः, जेल से छूटने पर वह जनता की दृष्टि में संदिग्ध बन जाता और इस प्रकार अपनी आजीविका-प्राप्ति में असफल रहने के कारण वह नये-नये अपराध करने में प्रवृत्त होता। कांग्रेसी सरकारों के अनेक पदाधिकारियों को जेलों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष अनुभव था। अतः शासन-सूत्र ग्रहण करने पर कांग्रेस वालों ने जेल की प्रणाली में आमूल परिवर्तन करने का निश्चय किया। परिवर्तन का निश्चित और ब्यौरेवार स्वरूप सामने रखने के लिए जेल-सुधार कमेटियां नियत की गयीं। इन्होंने विविध उपयोगी सिफारिशें की है, जिन्हें कार्य में परिणत करने का प्रयत्न किया जा रहा है। उदाहरणवत् संयुक्त प्रान्त की जेल-सुधार कमेटी ने अन्यान्य बातों में यह सिफ़ारिश की है कि सब राजनैतिक क़ैदियों को इकट्ठा एक जेल में रखा

जाय। उन्हें आपस में मिलने-जुलने की स्वतन्त्रता हो, एक अख़बार सरकारी ख़र्च पर, और अन्य अख़बार उनके अपने ख़र्च पर, पढ़ने को दिये जायँ, प्रति सप्ताह एक मुलाक़ात और एक पत्र लिखने की इजाज़त हो, खेल खेलने, बजाने का सामान रखने एवं बाहर सोने की सुविधा हो। यह भी सिफ़ारिश की गयी है कि राजनैतिक क़ैदियों को वही काम दिया जाय जो वे पसन्द करें और दूसरा काम करने को उन्हें मजबूर न किया जाय, तथा उन्हें घर में बीमारी या मृत्यु होने पर बाहर जाने के लिए छुट्टी दे दी जाय। स्त्री राजनैतिक क़ैदियों को तेल, कंघी, चूड़ियां और हाथ-पंखे रखने की इजाज़त हो। क़ैदियों से कोल्हू चलवाना, चरस से पानी खिंचवाना तथा उन्हें चूना और आटा पीसने की चक्कियों में लगाना बन्द कर देने की सिफ़ारिश की गयी है।

अन्य सिफ़ारिशों के अनुसार अच्छा काम करने वाले क़ैदी को नक़दी में इनाम दिया जायगा। कोड़ा और डंडा-बेड़ी की सजा ख़त्म कर दी जायगी। १५ वर्ष तक अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा रहेगी। बैरकों में बन्द होने के बाद क़ैदी आधे घंटे तक गीत गा सकेंगे। भोजन में विविधता रहेगी। उत्सवों और त्यौहारों पर पूरियाँ व मिठाइयाँ भी मिला करेंगी। धूम्रपान करने वालों को बीड़ी व तमाखू पीने की, तथा धूम्रपान न करने वालों को गुड़ खाने की इजाज़त होगी। कपड़े और बिछौने अच्छे दिये जायँगे। क़ैदियों को दस्त-कारी और उद्योग धंधे सिखाये जायँगे। अस्तु, आशा है अब जेल

केवल दंड भोगने की जगह न रह कर, जीवन को सुधारने, उसे नागरिकता की दृष्टि से अधिक उपयोगी बनाने वाली संस्था होगी।❀

पहले जेलों में बहुत-से आदमी केवल इसलिए कैद करके रखे जाते थे, कि वे तत्कालीन शासन-पद्धति को दूषित मानते तथा इसका विरोध करते थे। अब कांग्रेसी सरकारों के पदाधिकारी तक शासन-पद्धति की आलोचना करते हैं, और दूसरों द्वारा की जाने वाली उचित, लोक-हितैषिता-मूलक आलोचना का स्वागत करते हैं। अतः कांग्रेसी प्रान्तों में राजनैतिक कैदियों को छोड़ दिया गया है। इसके फल-स्वरूप जेलों का यह खर्च कम हो रहा है।

———

❀इस विषय का सविस्तर विवेचन हम ने अपनी 'अपराधचिकित्सा' पुस्तक में किया है।

सातवाँ अध्याय

जन-हितकारी कार्य

"सरकारी प्रबन्ध राजस्व के एक बहुत बड़े भाग को खा जाता है, और दूसरे कामों के लिए बहुत कम बचने पाता है।"

—जे० सी कुमारप्पा

इस अध्याय में स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, उद्योग, निर्माण कार्य, और ग्राम-सुधार के व्यय के सम्बन्ध में विचार करेंगे। ये विषय जन-हितकारी या राष्ट्र-निर्माण सम्बन्धी है। इन में से निर्माण-कार्य तो केन्द्रीय एवं प्रान्तीय दोनों है, शेष सब विषय प्रान्तीय हैं।

अग्रसर नीति की आवश्यकता—इन विषयों का इकट्ठा विचार करने का कारण यह है कि अब तक सरकार की नीति मुख्यतया शान्ति और सुव्यवस्था की ही रही है, उसने उस के लिए इतना अधिक खर्च किया कि जन-हितकारी कार्यों के लिए प्रायः धनाभाव ही रहा। अस्तु, इन कार्यों की घोर उपेक्षा की गयी है। अब इन के सम्बन्ध में विशेष कार्य-शील नीति अवलम्बन किये जाने की आवश्यकता है।

सरकार को अन्य कार्यों का खर्च कम कर के इन कामों में

खर्च बढ़ाना चाहिए। यही नहीं, प्रत्येक प्रान्तीय सरकार के सामने, अपने-अपने प्रान्त के सम्बन्ध में इन कार्यों के लिए एक पञ्च-वर्षीय योजना होनी चाहिए, और उस योजना के अनुसार काम करने के लिए यदि प्राप्त साधनों से काफ़ी द्रव्य न मिले तो उसे आवश्यकतानुसार ऋण लेने में संकोच नहीं करना चाहिए। इस प्रकार धन की कमी के कारण ये कार्य रुके न रहने चाहिएँ। किसी प्रान्तीय सरकार को यह सोच कर संतोष न करना चाहिए कि जैसी-कुछ हमारी आय थी, उस के अनुसार हम ने जन-हित-कारी कार्यों के लिए भरसक प्रयत्न किया; जिस काम में पहले चार-पाँच करोड़ रुपये खर्च होता था उस में अब छः सात करोड़ रुपये तक खर्च करने की व्यवस्था की गयी है। वास्तव में, सरकार के सामने तो प्रत्येक जन-हितकारी कार्य का एक निश्चित, सुनिर्धारित कार्य-क्रम रहना चाहिए, और उस के लिए यदि पहले की अपेक्षा दुगना-तिगुना भी रुपया आवश्यक हो वह खर्च किया जाना चाहिए। तभी तो एक निश्चित अवधि में यथेष्ट कार्य हो सकेगा।

अस्तु, अब हम उपर्युक्त कार्यों में से प्रत्येक का पृथक्-पृथक् विचार करते है। पहले स्वास्थ्य और चिकित्सा का विषय लें।

स्वास्थ्य और चिकित्सा—इस मद में इन विषयों का खर्च सम्मिलित है :—

(अ) स्वास्थ्य—कार्यालय-व्यय, वेतन, भत्ता और सामान आदि; स्वास्थ्य के लिए ज़िला-बोर्डों और अन्य संस्थाओं को,

तथा यात्रा के स्थानों को सहायता; नगरों या देहातों में स्वास्थ्य की उन्नति; प्लेग, मेलेरिया, और छूत की बीमारियों का निवारण।

(आ) चिकित्सा—कार्यालय-व्यय; सुपरिन्टेन्डेन्ट; ज़िला-चिकित्सा अफसर, और अन्य कर्मचारी; अस्पताल और शफ़ा-खाने; सामान; मकान-किराया; विविध कर्मचारियों का वेतन और भत्ता आदि; रोगियों के वस्त्र और भोजन; चिकित्सार्थ सहायता; दाइयां, सेवा-समिति, आयुर्वेदिक कालिज आदि; मेडिकल स्कूल और कालिज; पागल-खाना; रासायनिक परीक्षक।

इस मद में भी विगत वर्षों में बहुत कम खर्च हुआ है, और जो खर्च हुआ है, वह भी अधिकतर कुछ थोड़े-से बड़े नगरों में हुआ है। भारतवर्ष की लगभग ९० प्रतिशत जनता देहातों में रहती है। उन के स्वास्थ्य और चिकित्सा के लिए नाम-मात्र की व्यवस्था रही है। इस का परिणाम यह हुआ कि देश में मृत्यु-संख्या बहुत बढ़ी हुई है, बुखार, चेचक, हैजा, आदि बीमारियों ने घर कर रखा है।

भारतवर्ष में संक्रामक रोगों का कैसा भयंकर प्रकोप है, यह सर्व-विदित है। प्रति वर्ष लाखों आदमी इन के शिकार होते हैं। और, पाश्चात्य देशों के अनुभव से यह कहा जा सकता है, कि यथेष्ठ वैज्ञानिक उपायों का अवलम्बन करने से इन में से अधिकांश के प्राण बचाये जा सकते हैं। अतः प्रत्येक प्रान्तीय सरकार का कर्तव्य है कि इस दिशा में आगे बढ़े। शासन का उद्देश्य ही जनता का हित होता है और मनुष्यों के प्राण बचाने से बढ़ कर

उन का हित और क्या हो सकता है ! निदान, इस काम में खर्च करने में कृपणता करना अल्पज्ञता और अदूरदर्शिता है, इस के लिए आवश्यकतानुसार ऋण लेने में भी संकोच न करना चाहिए।

शिक्षा—इस मद में इन विषयों का खर्च होता है :—विश्व-विद्यालय और कालिज, हाई और मिडल स्कूल, प्रारम्भिक शिक्षा, अन्य खास-खास पेशों आदि के स्कूल; डायरेक्टर, इन्स्पेक्टर और इनके सहायकों आदि का वेतन; आफिस खर्च; छात्रवृत्ति। शिक्षा कार्य में सब प्रान्तों में कुल मिला कर लगभग बीस करोड़ रुपये प्रतिवर्ष खर्च होता है; प्रायः बारह करोड़ रुपये प्रान्तीय सरकारों द्वारा, कुछ म्युनिसिपैलिटियों और ज़िला-बोर्डों द्वारा, तथा शेष प्राइवेट संस्थाओं द्वारा खर्च होता है।

शिक्षा-पद्धति के दोष—विगत वर्षों में जहां सरकार ने सेना और शासन आदि में खूब व्यय किया है, शिक्षा आदि में बहुत ही कम व्यय हुआ है। और, जो व्यय हुआ है, उसका भी राष्ट्रीय दृष्टि से जनता को यथेष्ठ लाभ नहीं मिला है। उच्च शिक्षा पर अपेक्षाकृत अधिक व्यय होना, शिक्षा संस्थाओं की इमारतों आदि का बहुत ध्यान रखना, उच्च शिक्षा का माध्यम अंगरेज़ी करना, सर्वसाधारण की शिक्षा की अवहेलना विविध पेशों की यथेष्ठ शिक्षा की व्यवस्था न होना आदि बातें सर्व विदित हैं। इन दोषों का परिणाम यह है कि देश में निरक्षरता का भयंकर

साम्राज्य है केवल दस फीसदी स्त्री-पुरुष कुछ पढ़ना लिखना जानते हैं। कालिजों से निकले हुए अधिकतर युवक नौकरी की तलाश में इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं। शिक्षितों की बेकारी बहुत बढ़ गयी है और उनकी आशाएँ तथा इच्छाएँ बढ़ जाने, और उनकी पूर्ति के साधन न मिलने से उनका जीवन बहुत संकटमय होगया है। अनेक बार आत्म-हत्या के दृश्य उपस्थित होते हैं।

उन्हें दूर करने का प्रयत्न——प्रान्तों में प्रजातंत्रात्मक सरकारों की स्थापना हो जाने, तथा शिक्षा के प्रान्तीय विषय होने से प्रान्तीय सरकारों, विशेषतया कांग्रेस-सरकारों ने उपर्युक्त बातों का विचार करके के लिए शिक्षा-विशेषज्ञों की उपसमिति नियत की, और उनकी रिपोर्ट के आधार पर शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन करने का निश्चय किया है, जिससे उपर्युक्त दोषों का निवारण हो। यह विचार किया जा रहा है कि प्रारम्भिक एवं माध्यमिक स्कूलों की प्रथा उठा कर उसकी जगह सात साल से लेकर चौदह साल की उम्र तक की आधार-भूत शिक्षा दी जाय, जिसमें दस्तकारी की शिक्षा की व्यवस्था अवश्य हो, जिसे समाप्त करके युवक अपनी आजीविका कमा सकें और गांवों में लौट कर वहां बस जाने की भी इच्छा रखें। इस शिक्षा प्रणाली का ध्येय ऐसे बालक बालिकाओं को तैयार करना होगा जो नौकरी की चिन्ता न करें, वरन् स्वावलम्बी जीवन व्यतीत कर सकें; साथ ही वे इस ज्ञान से भी परिपूर्ण हों कि राष्ट्र तथा समाज के प्रति

उनका क्या कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व है। इस लिए उन्हें नागरिक-शास्त्र आदि समाज-शास्त्र की भी शिक्षा दी जायगी।

निरक्षरता-निवारण--गांवों में वाचनालय, तथा साधारण एवं गश्ती पुस्तकालय स्थापित करने, तथा प्रौढ़ शिक्षा का प्रबन्ध करने की योजनाएँ बन गयी हैं, और उन पर अमल होना आरम्भ हो गया है। देश से निरक्षरता दूर करने का कार्य बहुत भारी है, और प्रान्तीय सरकारों के पास, मितव्ययिता से काम करते हुए भी रुपया बहुत कम है। तथापि भरसक प्रयत्न हो रहा है। युक्त प्रान्तीय सरकार ने प्रान्त से निरक्षरता दूर करने के लिये एक योजना बनायी है। इस योजना के अनुसार डिस्ट्रिक्ट बोर्डों के अध्यापकों से प्रार्थना की गयी है कि वे अपने खाली समय में बालिगों को साक्षर बनाने का कार्य करें। जो अध्यापक इस कार्य्य में विशेष उत्साह दिखलावेंगे उन्हें सरकार यथाशक्ति पुरस्कृत भी करेगी। यदि माध्यमिक और उच्च शिक्षा-संस्थाओं के विद्यार्थी अपनी छुट्टियों का समय देश की निरक्षरता दूर करने में लगावें तो इस महान कार्य में वे भी खासा भाग ले सकते हैं। हर्ष का विषय है कि बिहार आदि प्रान्तों में बड़े उत्साह से यह कार्य किया जा रहा है। मध्य-प्रान्त में कितने ही सज्जनों ने ग्राम-पाठशालाओं का खर्च चलाने के लिए यथेष्ठ भूमि प्रदान की है।

ध्यान देने की बात--हम शिक्षा-प्रचार में गैर-सरकारी

सहयोग का स्वागत करते हैं। जो व्यक्ति निष्काम भाव से, स्वार्थ-त्याग-पूर्वक देश बन्धुओं के अज्ञानांधकार दूर करने में सहायक हों, वे धन्य हैं। तथापि हम एक बात की ओर अधिकारियों का ध्यान दिलाना आवश्यक समझते हैं। देश से निरक्षरता-निवारण करने जैसे महान कार्य को कुछ अवैतनिक या नाम-मात्र का वेतन पाने वाले कार्यकर्ताओं के भरोसे छोड़ कर निश्चिन्त हो जाना उचित नहीं है। जिला-बोर्डों में जो अध्यापक निर्धारित समय स्कूल में काम करते हैं, वे अतिरिक्त कार्य को भी यथेष्ठ परिश्रम और उत्साह से कर सकेंगे, ऐसी आशा बहुत कम है; कारण, उन्हें अपनी तथा अपने बाल-बच्चों सम्बन्धी भी तो कुछ आवश्यकताएँ रहती हैं। कुछ व्यक्ति भले ही अतिरिक्त कार्य-भार को भली भांति उठाने के योग्य प्रमाणित हो, पर हम तो सर्व साधारण की बात कह रहे हैं।

हमारी सम्मति में, शिक्षा-प्रचार के लिए देश के शिक्षित बेकारों से समुचित सहायता लेनी चाहिए। उन्हें अपने लिए कुछ धनोत्पादक कार्य मिलने से उन को एवं जनता को बड़ा लाभ पहुंचेगा। अवश्य ही नये शिक्षकों का खर्चा प्रान्तीय सरकारों की वर्तमान आय से निकलना कठिन होगा, परन्तु इस के लिए, जैसा हम ऊपर बता चुके हैं, ऋण लेने का विचार रहना चाहिए। निरक्षरता-निवारण की पंचवर्षीय योजना को यथेष्ठ रूप से कार्य में परिणत करने के लिए प्रति वर्ष लगभग चालीस करोड़ रुपये की आवश्यकता होने

का अनुमान है, जिसमें से बीस करोड़ इस समय भी व्यय हो रहा है। शेष में से, जितना धन धनी-मानी उदार सज्जनों से मिल सके, प्राप्त किया जाना चाहिए। तदुपरान्त जो कमी रहे, उसका भार प्रान्तीय सरकारों को अपने ऊपर लेकर इस महान आयोजन को पूर्ण कर दिखाना चाहिए।

कृषि—इस मद्द का खर्च इन विषयों में होता हैं—

(अ) निरीक्षण—अधीन कर्मचारी; पशुपालन; कृषि-प्रयोग; कृषि-इंजिनियरिंग; कृषि-कालिज और अन्वेषण-शाला; अन्य निरीक्षक कर्मचारी; कृषि-फ़ार्म; नुमाइश और मेले; बनस्पति-शाला; ज़िलों के, और अन्य बाग़; कृषि-स्कूल।

(आ) पशु-सम्बन्धी व्यय—निरीक्षण; नुमाइश या मेलों में इनाम; अस्पताल और शफ़ाख़ाने; पशु-पालन-क्रिया; अधीन कर्मचारी।

(इ) सहकारी साख—रजिस्ट्रार; डिप्टी और सहायक रजिस्ट्रार; क्लर्क और नौकर; हिसाब की जाँच; सफ़र का भत्ता; आकस्मिक व्यय; छोटे नौकरों का वेतन; टाइप राइटर, किताब, कपड़े आदि।

प्रान्तीय सरकारों की आय का एक मुख्य साधन किसानों से प्राप्त मालगुज़ारी है। और, किसान ही देश के अन्नदाता है। उनकी भलाई के लिए जितना अधिक खर्च किया जा सके, अच्छा है। कृषि-विभाग के प्रयत्नों पर ही किसानों की, और इसलिए

अधिकांश जनता की उन्नति निर्भर है। देश में प्रति वर्ष अनाज की भयंकर कमी रहती है। यदि कृषि-विभाग के अफ़सर गाँवों में जा कर अपनी देख-रेख में किसानों को नये तरीक़ों से खेती करने को उत्साहित करें, और उत्तम बीज आदि की सहायता दें तो अन्न की उपज सहज ही बढ़ सकती है। निस्सन्देह इस काम के लिए कृषि-विभाग के अफ़सर देश-प्रेमी एवं अनुभवी होने चाहिएँ। पशु-चिकित्सा विभाग को स्थापित हुए कई वर्ष हो गये, तो भी अभी तक अनेक गाँवों में पशुओं की चिकित्सा का उचित प्रबन्ध करना बाक़ी है। सहकारिता के कार्य को भी बहुत बढ़ाने की ज़रूरत है।

हर्ष का विषय है कि अब प्रान्तीय सरकारें अन्यान्य कार्यों में कृषि की ओर भी अधिक ध्यान दे रही हैं। उदाहरणवत् बम्बई सरकार के तत्वावधान में दो संस्थाएँ एक पशु-पालन की शिक्षा देने, और डेअरी खोलने के लिए, तथा दूसरी पशुओं की नस्ल सुधारने और उन्हें परिपुष्ट बनाने के लिए खोली जाने वाली हैं। ये संस्थाएँ भारत में अपने ढंग की अकेली रहेंगी; इनके लिए आवश्यक धन बम्बई सरकार के कानून मंत्री, श्री० मुंशी द्वारा इकट्ठा कर लिया गया है; ,ये योजनाएँ भी आपही ने बनायी हैं। मि० इरावन्ती मनसुखलाल ने ग्रामीण युवकों को पशु-पालन-शिक्षा एवं कृषि सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करने के लिए नौ लाख रुपये देने का अभिवचन दिया है। सेठ मगनलाल गोयनका ने पशुओं की नस्ल सुधारने, दुधार गाय पालने एवं इस विषय

का अनुसँधान करने के लिए दूसरी संस्था को ६,००,०००) दिये हैं। ये संस्थाएँ आनन्द एवं कैरा के मध्यवर्ती ज़िले में स्थापित की जायँगी; जहां कि हज़ारों एकड़ ज़मीन सरलता-पूर्वक मिल सकती है। आशा है, अन्य प्रान्तों की सरकारें भी कृषि-कार्य की हर प्रकार से उन्नति करने में कोई प्रयत्न उठा न रखेंगी।

उद्योग धन्धे—इस मद में खर्च इन विषयों में होता है—निरीक्षण, उद्योग धन्धों की सहायता, अन्वेषण-संस्थाएँ, उद्योग और शिल्प संस्थाएँ, औद्योगिक बोर्ड की इच्छा से किया जाने वाला खर्च।

इस विभाग में भी विगत वर्षों में बहुत कम व्यय हुआ है, स्वदेशी उद्योग धन्धों को बहुत कम प्रोत्साहन मिला है। सरकार द्वारा अनेक दशाओं में, बढ़िया होने तथा कभी-कभी कुछ सस्ता होने के आधार पर, विदेशी ही माल खरीदा जाता रहा है। यही कारण है कि स्वदेशी उद्योग धन्धों की न केवल उन्नति रुक गयी, वरन उनका बहुत ह्रास होगया, और देश में बेकारी भयंकर रूप से बढ़ने में सहायता मिली। अब प्रान्तीय सरकारें इस ओर ध्यान दे रही हैं। उदाहरणार्थ संयुक्त-प्रान्त में इस वर्ष (१९३८) लगभग पचास प्रार्थियों को निम्नलिखित उद्योग सम्बन्धी तथा अन्य कार्य आरम्भ करने के लिए आर्थिक सहायता देने का निश्चय किया गया—अलमारी बनाना और लकड़ी का अन्य कार्य, तेल पेरना, जूते बनाना, रंगाई और छपाई, रंगीन खड़िया और स्लेट की पेन्सिलें बनाना, मिश्रित

धातुओं का बनाना, मौजे, ताले और साबुन बनाना, कपड़े बुनना आदि। प्रान्त के व्यवसाय तथा उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए प्रान्तीय सरकार कम सूद पर रुपया उधार देने को भी तैयार है। इस हेतु सरकार "संयुक्त-प्रान्तीय इन्डस्ट्रियल फाइनैंसिंग कारपोरेशन लिमिटेड" नामक बैंक १५ लाख रुपये की पूँजी से खोल रही है। अखिल भारतवर्षीय चरखा संघ तथा ग्राम-उद्योग संघ को प्रान्तीय सरकारों की सहानुभूति और सहयोग प्राप्त है। आशा है अब छोटे उद्योग धन्धों की क्रमशः उन्नति होगी। प्रान्तीय सरकारें बड़े उद्योग धन्धों सम्बन्धी विविध समस्याएँ सुलझाने और उनकी उन्नति में सहायक होने का भी विचार कर रही हैं। पिछले दिनों जहां-जहां पूँजीपतियों तथा मजदूरों का संघर्ष अथवा हड़तालें हुईं, उस प्रान्त की सरकार ने तत्परता-पूर्वक उसका अन्त करने का प्रयत्न किया। यही नहीं, इस बात का सदैव ध्यान रखा गया कि श्रमजीवियों का भावी जीवन अधिक सुखमय तथा उन्नत हो, एवं पूँजीपति कुछ स्वार्थ-त्याग के भाव से काम लें।

प्रान्तीय सरकारें, अब मजदूरों का कुशल-क्षेम बढ़ाने और रहन-सहन के ढंग के सुधारने के लिए भी प्रयत्नशील हैं। उदाहरणार्थ संयुक्त-प्रान्त में सरकार ने कानपुर के श्रमियों के लिए उचित गृह-निर्माण के कार्य में पूंजीपतियों, सरकारी गृह-निर्माण संस्थाओं एवं मिश्रित पूँजी की कम्पनियों को सहायता देने का निश्चय किया है। सरकार इस योजना में सक्रिय भाग लेने वालों

को सस्ते दामों में पानी देगी, तथा मोरियों का प्रबन्ध करने एवं इसके लिए भूमि प्राप्त करा देने में पर्याप्त सहायता देगी। इस योजना में लगभग पाँच लाख रुपये की पूँजी लगेगी।

पेशों सम्बन्धी शिक्षा का कार्य अग्रसर करने का भी प्रयत्न हो रहा है। कुछ व्यक्तियों को विशेष रूप से ऐसी शिक्षा दी जायगी कि वे अमली तरीके से गाँव वालों को शिक्षित बनावें। प्रान्तीय सरकारें कुछ छात्रवृत्तियाँ भी देती है, जिन की सहायता से छात्र वृत्ति पाने वाले व्यक्ति विदेशों में जाकर व्यापार या व्यवसाय सम्बन्धी औद्योगिक या शिल्प विषयों की शिक्षा प्राप्त कर सकें, या इस प्रकार के व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर सकें जिन से प्रान्त के उद्योगों द्वारा तैयार की हुई वस्तुओं की बिक्री में ठोस सहायता मिले।

उद्योग धन्धों की उन्नति के लिए एक अत्यन्त आवश्यक बात यह है कि तैयार पदार्थों की खपत हो। इस विषय में सर्व-साधारण के अतिरिक्त स्वयं सरकार भी बहुत सहायक हो सकती है। गत वर्षों में सरकार ने अपनी आवश्यकता का सामान यहाँ का ही खरीदने, और तैयार न मिलने की दशा में, उसे यहां ही बनवाने की ओर प्राय: कुछ भी ध्यान नहीं दिया; उसने विला-यती माल खरीद कर उस की आयात को प्रोत्साहन दिया। इस समय भी भारत सरकार के व्यवहार में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है; हां, प्रान्तों की कांग्रेस सरकारें इस दिशा में अपना कर्तव्य पालन कर रही हैं। उदाहरणवत् संयुक्त-प्रान्तीय सरकार

ने यह तय किया है कि कौन्सिल और असेम्बली के अध्यक्षों, मन्त्रियों तथा पार्लिमेंटरी सेक्रेटरियों के इस्तेमाल के लिए हाथ का बना कागज, और बाक़ी सरकारी कर्मचारियों को भारत में बना कागज़ दिया जायगा। इस सरकार का यह निश्चय अनुकरणीय है, और हमें पूरी आशा है कि बाकी छः प्रान्तों की कांग्रेसी सरकारें भी ऐसा ही करेंगी।

निर्माण कार्य—इस मद के केन्द्रीय भाग में भारत सरकार से सम्बन्ध रखने वाली इमारतें, तथा दफ़्तर; एवं समुद्रों में रोशनी-घर आदि बनाने तथा उन की मरम्मत करने का व्यय सम्मिलित हैं, और, प्रान्तीय निर्माण-कार्य में निम्नलिखित ख़र्च होता है:—नयी इमारतों का ख़र्च, नयी सड़कों का ख़र्च, सड़कों और इमारतों की दुरुस्ती का ख़र्च, अफसरों का वेतन और आफ़िस ख़र्च, औज़ार इत्यादि ख़रीदने का ख़र्च, म्युनिसिपैलिटी, ज़िला-बोर्ड और क़स्बों की इमारतों के लिए दी जाने वाली रक़म, स्वास्थ्य-रक्षा के लिए निर्माण-कार्य, इमारतें तथा पुल आदि।

अब तक इस मद सम्बन्धी ख़र्च में सर्व साधारण की आवश्यकताओं का विचार बहुत कम किया गया। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय राजधानियों की सरकारी इमारतों तथा सड़कों आदि को देख कर किसी विदेशी को यह कल्पना नहीं हो सकती कि यह देश बहुत निर्धन है, और यहां की एक-तिहाई जनता को दो समय भर-पेट भोजन भी नहीं मिलता। ज़िलों में भी सदर-मुकाम

और सब-डिविजन के केन्द्र में बीच की सड़कें तो कुछ अच्छी हालत में रखी गयीं, परन्तु अन्य रास्तों पर कृपा-दृष्टि नहीं की गयी। सड़कों का काम अब से कुछ समय पूर्व तक अधिकांश में ज़िला-बोर्डों तथा म्युनिसिपल बोर्डों के हाथ में रहा, जिन का ध्यान अपने ही इलाके भर में रहता है, और जिन के पास सदैव ही अपने कार्यों को अच्छी तरह पूरा करने के लिए रुपये की कमी होती है। दफ़रों आदि की कुछ खास-खास इमारतें तथा इनी-गिनी सड़कें बनवा देने में इन के कर्तव्य की इति-श्री समझी जाती रही। अब कई सड़कें प्रान्तीय कर दी गयी हैं, और वैसे भी प्रान्तीय सरकारें इस कार्य की ओर अधिक ध्यान दे रही हैं। अतः सड़कों की दशा सुधर रही है। तथापि अभी बहुत काम करना शेष है।

इस विभाग में प्रायः ईमानदारी का काम कम होता है। सड़कों तक ईमारतों का काम ठेके पर होता है, इस में सम्बन्धित अधिकारी से मेल मुरव्वत या प्रलोभन से काम निकाला जाता है, और इस प्रकार रुपया अपेक्षाकृत अधिक ख़र्च होने पर भी बहुधा काम केवल दिखावटी और निम्न श्रेणी का होता है। हर्ष की बात है, अब प्रान्तीय सरकारें इस में सुधार कर रही हैं।

ग्राम-सुधार—यह कोई एक कार्य नहीं हैं, वरन् कई कार्य्यों का सामुहिक नाम है। इस के अन्तर्गत ग्रामों में स्वास्थ्य, चिकित्सा और सफ़ाई, शिक्षा-प्रचार, पुस्तकालय वाचनालयों की स्थापना,

कृषकों को ऋण-मुक्त करना, उन्हें खेती सम्बन्धी सुधारों का ज्ञान कराना, छोटे-छोटे उद्योग धन्धों और गृह-शिल्प की उन्नति तथा कुए और सड़कें बनवाना आदि उन सब कार्यों की गणना होती है, जिनसे गाँव वालों की सुविधाएँ बढ़ें, और उन के सुख की वृद्धि हो। भारतीय जनता का ९० प्रतिशत भाग गावों में रहता है; सरकार की आमदनी भी अधिकांश में गांव वालों से ही होती है। परन्तु यह होते हुए भी पिछली दशाब्दियों में गाँव वालों के हित साधन की ओर कुछ उल्लेखनीय ध्यान नहीं दिया गया। उनका जीवन अधिकाधिक कष्टमय होता गया। आधुनिक उन्नति की बातें इने-गिने नगरों तक ही परिमित रहीं।

जब राजनैतिक आन्दोलन की लहर गावों की ओर बढ़ी, तो ग्राम-वासियों की सहानुभूति प्राप्त करने के वास्ते ग्राम-सुधार के लिए भारत-सरकार ने सर्व-प्रथम सन् १९३५-३६ ई० में कुछ विशेष ध्यान दिया। उस वर्ष एक करोड़ रुपया इस कार्य के लिए निर्धारित किया गया, तथा अगले वर्ष बजट में बचत होने पर वह भी इसी मद में लगाने का विचार किया गया। यह रक़में देश की विशाल जनता और क्षेत्र की दृष्टि से अत्यल्प थीं, फिर. इस का भी पूरा उपयोग नहीं हुआ; और अधिकतर रुपया सरकारी कर्मचारियों के वेतन और भत्ते आदि में तथा अन्य दिखावटी कामों में खर्च किया गया। गाँवों को विशेष लाभ न हुआ।

सन् १९३५ ई० का नया विधान सन् १९३७ से अमल में आने लगा, उसके अनुसार प्रान्तीय सरकारें प्रजातंत्रात्मक है। और, वे

विशेषतया तथा कांग्रेस सरकारें ग्रामोन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं। उन का ग्राम-सुधार विभाग यथा-सम्भव अवैतनिक कार्यकर्ताओं के सहयोग से उचित दिशा में काम करने लगा है। परन्तु जैसा कि पहले कहा गया है, प्रान्तीय सरकारों के पास रुपये की बहुत कमी है, और वे अपने प्राप्त साधनों की पहुंच तक ही काम करना चाहती हैं, ऋण लेने का यथा-सम्भव विचार नहीं करतीं, इस लिए उन के कार्य की गति बहुत मंद है।

हर्ष का विषय है कि बम्बई सरकार इस ओर अग्रसर होरही है। मालूम हुआ है कि अगर भारत-सरकार ने इजाज़त और मंजूरी दे दी तो बम्बई सरकार ग्रामोत्थान कारपोरेशन के लिए पांच करोड़ रुपया कर्ज़ लेगी। यह संस्था बम्बई प्रान्त के किसानों के उत्पादक कार्यों और कर्जों की आंशिक अदायगी के लिए थोड़ी मियाद के सस्ते दरों पर ऋण देगी। सरकार के ध्यान में जो ग्रामोत्थान कार्य-क्रम है, उपर्युक्त योजना उसी का एक अंग है। क्योंकि यह कारपोरेशन तीन प्रतिशत ब्याज के साथ रक़म की वापसी की सरकारी गारंटी वाली संस्था होगी, यह आशा की जाती है कि जो साहुकार अभी तक गरीब किसानों को भारी-भारी सूद पर कर्ज दिया करते थे, लेकिन उसकी वसूली में नाकामयाब रहते थे, वे अपने आप इस कारपोरेशन में रुपया लगावेंगे। आशा है बम्बई सरकार की यह योजना शीघ्र कार्यान्वित होगी, और इसकी सफलता से अन्य प्रान्तों की सरकारों को ग्राम-सुधार के ऐसे-ऐसे कार्य करने का यथेष्ट प्रोत्साहन मिलेगा।

विशेष वक्तव्य—ऊपर हमने जन-हितकारी कार्यों में से प्रत्येक के विषय में आवश्यक कथन किया है। जैसा कि हमने इस अध्याय के आरम्भ में लिखा है, इन कार्यों की ओर सरकार को विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। इसके लिए कुछ काम-चलाऊ या शिथिलता की नीति ठीक नहीं। किसी काम में कुछ रुपया लगाने, फिर धनाभाव से उसे बन्द कर देने, कुछ समय बाद पुनः उसमें रुपया लगाने से काम पूरा होने में देर तो होती ही है, इसमें अपव्यय भी बहुत होता है। अतः स्थिरता, दृढ़ता और आत्म-विश्वास-पूर्वक कार्य होना चाहिए। हमें रूस, अमरीका और जर्मनी के उदाहरणों से लाभ उठाना चाहिए।

रूस ने जब प्रथम बार पंच-वर्षीय योजना बनायी तो अनेक आदमियों को उसकी सफलता का निश्चय नहीं था, उसका खूब उपहास किया गया। परन्तु रूस के सुयोग्य सूत्रधारों ने न केवल उस योजना को कार्यान्वित किया, वरन् उसके बाद दूसरा-आयोजन भी सफल कर दिखाया। कुछ समय पूर्व जर्मनी में चार लाख से अधिक बेकार थे। परन्तु जर्मनी ने जो चार वर्ष की योजना चलायी तो लोगों का बेकार रहना तो दूर, अब काफ़ी आदमी ही नहीं मिल रहे हैं। जर्मनी ने सैनिक कार्य की भांति जबर्दस्ती मज़दूरी का काम लेने का क़ानून बना दिया है। संयुक्त-राज्य अमरीका में बेकारों की संख्या एक करोड़ थी। वहां के राष्ट्रपति रूज़वेल्ट ने बेकारों की समस्या हल करने के लिए कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा। मिल-मालिक तथा पूँजीपति उनकी

आर्थिक योजनाओं का विरोध करते रहे, पर वे सरकारी ऋण के दूना होजाने पर भी उन योजनाओं को कार्य में परिणत करने में तनिक भी विचलित न हुए। उनकी नीति से ग़रीब किसानों और मज़दूरों का अपरिमित हित-साधन हुआ है। हमारे प्रान्त भी अपने-अपने मंत्रियों में रूज़वेल्ट की सी दृढ़ता और आत्म-विश्वास चाहते हैं।

आठवाँ अध्याय

अन्य व्यय

पिछले अध्यायों में सरकारी व्यय की विविध प्रमुख मदों का विचार कर चुकने पर अब इस अध्याय में शेष मदों के सम्बन्ध में लिखा जायगा। ये मदें निम्नलिखित हैं :—

१—मुद्रा टकसाल और विनिमय

२—राजनैतिक

३—धार्मिक

४—सूद

५—कर वसूल करने का खर्च

६—व्यवसायिक कार्यों का खर्च

मुद्रा, टकसाल और विनिमय—यह मद केन्द्रीय भी है, और प्रान्तीय भी है। इस मद के केन्द्रीय हिसाब में, इन विषयों के कार्यालयों तथा टकसालों को चलाने का ख़र्च शामिल है। विनिमय की क़ानूनी दर एक शिलिंग छः पेंस फ़ी रुपया है इस प्रकार इङ्गलैड में भारतवर्ष-सम्बन्धी जो खर्च होता है, उसे चुकाने के लिए एक पौंड पीछे, तेरह रुपए पांच आने चार पाई दिया जाता है। जब कभी यह दर गिर जाती हैं, उदाहरण के लिए फ़ी रुपया एक शिलिंग चार पेंस हो जाती है, और प्रति पौंड १५ रु० देने पड़ते हैं, तो इस से जो क्षति होती है, वह विनिमय की मद के ख़र्च में डाल दी जाती है। (यदि विनिमय की दर बढ़ जाय तो उस से होने वाला लाभ, विनिमय की आय में शामिल किया जाता है।)

इस मद के प्रान्तीय हिसाब में अधिकांश केवल विनिमय-सम्बन्धी ख़र्च ही होता है। वि निमय की दर से जब प्रान्तों को हानि होती है, तो वह इस मद के ख़र्च में दिखायी जाती है।

सन् १८९३ ई० से भारत-सरकार ने जनता को इस अधिकार से वंचित कर दिया कि वह अपनी चांदी टकसाल में ले जाकर उसके रुपये ढला सके। अब केवल सरकार को ही रुपये ढालने का अधिकार है। भारतवर्ष में सोने का सिक्का भी प्रचलित नहीं है, वरन् सरकार ने इंगलैंड के सोने के सिक्के अर्थात् पौंड के भाव पर रुपये की कीमत निश्चित कर रखी है। भारतवर्ष में जो सिक्का (रुपया) प्रचलित है, उस में लगी हुई धातु का मूल्य सिक्के के साधारण बाज़ारू मूल्य से बहुत कम है। सरकार को उस के ढालने से बहुत लाभ रहता है।

इस लाभ की रक़म जिस कोष में जमा रहती है, उसे मुद्रा-ढलाई-लाभ-कोष कहते हैं। इस कोष से रुपये और पौंड की विनिमय-दर स्थिर रखने में सहायता ली जाती है। इस कोष की रकम चार करोड़ पौंड (अर्थात् साठ करोड़ रुपये) है, और इस का अधिकतर भाग इंगलैंड में ब्रिटिश सरकार की सिक्यूरिटियों (सरकारी ऋण-पत्रों) में रखा जाता है। यह सर्वथा अनुचित है; यह कोष भारतवर्ष में रहना चाहिए, और इसका लाभ भारतवर्ष को ही मिलना चाहिए।

भारतीय लोकमत रुपये की वर्तमान विनिमय-दर (अठारह पेंस) का निरन्तर विरोध करता रहा है। यहाँ के नेताओं के मत से यह दर सोलह पेन्स होनी चाहिए। वर्तमान अवस्था में भारतवर्ष के, जितने निर्यात-माल की कीमत एक पौंड होती है, उस का भारतवासियों को तेरह रुपये पांच आने चार पाई मिलते हैं। यदि पूर्वोक्त सुधार हो जाय तो उस माल के पन्द्रह रुपये मिलने लग जायँ। यहाँ से अधिकांश में कच्चे माल की निर्यात होती है, और कच्चा माल पैदा करने वाले अधिकतर निर्धन किसान हैं। इस प्रकार विनिमय की दर में उपर्युक्त सुधार हो जाने से किसानों की आर्थिक उन्नति हो। इस के अतिरिक्त जो विदेशी माल इस समय भारतवर्ष में १३।-)४ पाई का पड़ता है, वह उपर्युक्त सुधार होने से १५) का पड़ने लग जाय। इस से भारतीय उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन मिले, स्वदेशी माल यहाँ अधिक खपने लगे, और विदेशी माल का उपभोग कम हो जाय। इस प्रकार विनिमय की दर गिरने से कृषकों तथा व्यवसायियों दोनों ही वर्गों को लाभ हो, जो भारतीय जनता के अधिकांश हैं।

परन्तु सरकार इस सुधार करने की इच्छुक नहीं है। उस का कथन है कि विनिमय की वर्तमान दर बनी रहने से यहाँ विलायती माल सस्ता पड़ता है, और मशीन आदि मँगाने में कम ख़र्च होने से यहां के व्यवसाय को सहायता मिलती है। पुनः भारत-सरकार को अपने विलायती ख़र्च (होम चार्जेस) के प्रतिवर्ष लगभग ३॥ करोड़ पौंड देने होते हैं; वर्तमान

विनिमय-दर के हिसाब से यह रक़म लगभग ४७ करोड़ रुपये होती है। यदि रुपये की विनिमय-दर गिरा कर सोलह पैंस कर दी जाय तो प्रति पौंड पन्द्रह रुपये के हिसाब से विलायती खर्च की मद में ५२॥ करोड़ रुपये देने पड़ा करें। इस प्रकार सरकार का वार्षिक ख़र्च लगभग छः करोड़ रुपये बढ़ जाय। यह तो मुख्य बात हुई, और भी बातें कही जाती हैं। परन्तु भारतवर्ष के सामने प्रधान प्रश्न कृषकों और व्यवसायियों की उन्नति करने का है। इसी दृष्टि से, कुछ समय हुआ, बम्बई में कांग्रेसी प्रधान-मंत्रियों की एक सभा हुई थी। उस में यह निश्चय किया गया था कि सब प्रान्तीय सरकारें मिल कर केन्द्रीय सरकार को, रुपये की विनिमय-दर गिराने के लिए बाध्य करें। व्यापारियों द्वारा इस का स्वागत होना स्वाभाविक ही था। परन्तु भारत-सरकार ने यह घोषणा कर दी है कि वह विनिमय-दर नहीं गिराएगी। सरकार के इस निर्णय पर देश में बहुत असन्तोष है, और सम्भव है यह एक विशाल आन्दोलन के रूप में प्रकट हो।

राजनैतिक खर्च—यह मद केन्द्रीय है। इसमें प्रतिवर्ष तीन-चार करोड़ रुपये खर्च होता है। बजट में यह ख़र्च सिविल शासन के अन्तर्गत दिखाया जाता है। इसका बहुत-सा भाग पश्चिमी सीमा के स्थानों में ख़र्च होता है, वहाँ सरदारों को शांति-स्थापन के लिए विविध रक़में दी जाती हैं। विदेशों में अथवा भारतवर्ष के देशी राज्यों में, भारत-सरकार के जो एजंट रहते हैं उनका वेतन आदि भी इसी मद के ख़र्च में सम्मिलित होता है। इस ख़र्च पर व्यवस्थापक मंडल के सदस्यों को मत देने का अधिकार नहीं है। राजनैतिक विभाग में कुछ भिन्न-भिन्न एजंसियों को संयुक्त करने, तथा कुछ को न रखने से सहज ही ख़ासी

बचत हो सकती है। फ़ारिस की खाड़ी के तटस्थ प्रदेश, अफ़ग़ानिस्थान, तिब्बत, तुर्किस्थान आदि के सम्बन्ध में जो खर्च होता है, वह वास्तव में भारतवर्ष के इस विभाग में न डाल कर ब्रिटिश सरकार द्वारा दिया जाना चाहिए; कारण, वह उसी से सम्बन्धित है। पुनः इस विभाग में कुछ खर्च ऐसे भी हैं, जो सेना सम्बन्धी हैं; वे सेना की मद्द में डाले जाने चाहिएँ।

राजनैतिक खर्च में वास्तविक कमी करने के लिए सीमा-प्रान्त सम्बन्धी नीति में परिवर्तन किये जाने की आवश्यकता है। भारत-सरकार के सन् १८५९ की पश्चिमोत्तर सीमा से आगे बढ़ने से देश को बड़ी हानि पहुँची है। वज़ीरिस्तान में वह प्रतिवर्ष करोड़ों रुपये व्यय करती है। कम उपजाऊ भूमि में निवास करने वाली, स्वतंत्रता-प्रेमी वीर जातियों की प्यारी स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने से सरकार की नैतिक और आर्थिक हानि अनिवार्य ही है। यह हस्तक्षेप बन्द किया जाना चाहिए।

धार्मिक खर्च—इस मद्द से ईसाई पादरियों को वेतनादि दिया जाता है। यह खर्च केन्द्रीय है; बजट में इसे सिविल शासन में दिखाया जाता है, इस पर व्यवस्थापक मंडल को मत देने का अधिकार नहीं है। इस मद्द में प्रतिवर्ष लगभग पैंतीस लाख रुपये खर्च होता है। सरकार द्वारा होने वाले कुल खर्च की तुलना में इसका परिमाण साधारण-सा दीखने पर भी यह सर्वथा आपत्ति-जनक है। जब कि भारतवर्ष में हिन्दू, मुस्लिम, पार्सी आदि और

भी कई धर्म प्रचलित हैं, सरकार द्वारा एक विशेष धर्म के लिए कुछ खर्च किया जाना नितान्त अनुचित प्रतीत होता है; या तो सरकार सभी धर्माधिकारियों के लिए खर्च करे, अथवा एक विशेष धर्म के लिए किये जाने वाले खर्चों को भी बन्द कर दे।

सूद—पहले कहा जा चुका है कि भारतवर्ष की केन्द्रीय सरकार तथा सब प्रान्तों की सरकारें लगभग दो सौ करोड़ रुपया वार्षिक खर्च करती है। खर्च की अन्य मद्दें तो ऐसी हैं, जिन के बदले में हमें कुछ काम या कोई वस्तु मिलती है, परन्तु एक मद्द ऐसी भी है जिस के बदले में हमें न तो इस समय ही कुछ मिलता है, और न भविष्य में ही कुछ मिलेगा। वह मद्द है, लगभग १४ करोड़ रुपये वार्षिक सूद की। यह सूद उस रक़म (पूंजी) पर दिया जाता है, जो भारत-सरकार ने ऋण लेकर भूतकाल में खर्च की है। यह कहा जा सकता है, कि इस रक़म का लाभ भारतवर्ष भूत-काल में उठा चुका। परन्तु यह कथन भी ठीक नहीं है, क्यों कि यह ऋण सरकारी फ़ज़ूलखर्ची, तथा व्यर्थ के युद्ध आदि अनुत्पादक कार्यों से हुआ है। [उत्पादक कार्यों के ऋण का सूद इस मद्द से अलग उन कार्यों के हिसाब में दिखाया जाता है।] ऋण के सम्बन्ध में विशेष आगे एक स्वतन्त्र अध्याय में लिखा जायगा।

कर वसूल करने का खर्च—इस मद्द में आयात-निर्यात कर, मालगुज़ारी, स्टाम्प, रजिस्ट्री, अफ़ीम, नमक और देशी माल पर कर की आय वसूल करने वाले कर्मचारियों के वेतन आदि के

अतिरिक्त, अफ़ीम और नमक तैयार करने का ख़र्च भी सम्मिलित है। विगत वर्षों में कर वसूल करने के खर्च में बहुत वृद्धि हुई है। वृद्धि का कारण विशेपतया सरकारी कर्मचारियों के वेतन का बढ़ना है। भारतवर्ष में अन्य अनेक देशों की अपेक्षा इस मद्द के ख़र्च का, कुल सरकारी ख़र्च से अनुपात अधिक है, इस का एक कारण यह भी है कि यह देश बहुत विस्तृत है और प्रति ग्राम, आय की रक़म कम रहती है, तथापि यदि उच्च पदों पर भारतीयों की नियुक्ति हो तो उन के वेतनादि में बहुत क़िफ़ायत हो सकती है, और फलतः इस विभाग में होने वाला ख़र्च भी घट सकता है। इस समय यद्यपि निम्न कर्मचारियों का वेतन मामूली है, उच्च पदों पर अधिकतर विदेशी, और विशेपतः अँगरेज़ नियुक्त हैं, जिन्हें वेतन बहुत अधिक दिया जाता है। इन नौकरियों के भारतीयकरण द्वारा इस मद्द के खर्चों में कमी की जानी चाहिए। इस विषय पर विशेप पहले लिखा जा चुका है।

व्यवसायिक कार्यों का व्यय—कुछ कार्य सरकार जनता की सुविधा के लिए बड़ी पूँजी लगा कर किया करती है। ऐसे कार्यों का संचालन व्यवसायिक दृष्टि से किया जाता है, जिससे इनका खर्च इनसे ही निकल जाय, और थोड़ा-बहुत लाभ हो तो वह जन-हितकारी या शासन प्रबन्ध-सम्बन्धी अन्य कार्य में लगा दिया जाय। भारतवर्ष में सरकार के व्यवसायिक कार्य रेल डाक, तार, जंगल, और आवपाशी आदि हैं। सरकार द्वारा जो हिसाब प्रकाशित किया जाता है, उसमें उक्त मद्दों की कुल आमदनी में से

इन कर्मचारियों के वेतन आदि का खर्चा घटा कर शेष रक़म ही आय के रूप में दिखायी जाती है। अतः इन के खर्चा में, विविध कर्मचारियों के वेतन आदि का खर्चा न दिखा कर केवल इन कार्यों में लगी हुई पूँजी का सूद ही दिखाया जाता है। ये कार्य मुख्यतया आय के लिए किये जाते हैं। यद्यपि इनमें प्रति वर्ष करोड़ों रुपये खर्चा होते हैं, इनका विचार आय के प्रसंग में ही किया जाता है। इस लिए हम भी इस मद का विचार सरकारी आय की मदों में करेंगे।

नवाँ अध्याय

सरकारी आय

"जैसे समुद्र से भाफ उठ कर बादल बनते हैं, उसी तरह, प्रजा के धनवान भाग से वसूल होकर कर को राज-कोष में जाना चाहिए। और जैसे बादल ऐसे खेतों में जाकर बरसता है जहां उस की आवश्यकता है, उसी तरह कर से इकट्ठा किया हुआ धन ऐसी प्रजा में बँट जाना चाहिए, जो उस धन से अपनी उपज बढ़ा सके।"

पिछले अध्यायों में सरकारी खर्च का विचार किया गया है। खर्च के लिए रुपया कहां से आता है? यह रुपया जनता से ही

प्राप्त किया जाता है। इसके लिए किस-किस प्रकार के कर आदि लगाये जाते हैं, इसमें किन-किन बातों का विचार रखा जाना आवश्यक है, कर लगाने के सिद्धान्त क्या है, भारतवर्ष में सरकारी आय की मुख्य मुख्य मद्दें क्या हैं, इन बातों का विचार इस अध्याय में किया जायगा।

आय के मुख्य भेद--सरकार की आय के मुख्य भेद निम्न लिखित हैं :—

(१) कर।

(२) सरकारी शुल्क।

(३) व्यवसायिक आय।

इसके अतिरिक्त आय के कुछ साधन ये हैं :—सरकारी सम्पत्ति और नज़ूल, (सरकारी ज़मीन), लावारिस सम्पत्ति, युद्ध आदि के लिए लोगों को दिया हुआ दान, चन्दा या सहायता, और ज़ब्त किया हुआ माल तथा जुर्माना।

कर—कर, सरकार को उसके उन कार्यों के लिए अनिवार्य रूप से दिया हुआ धन है, जो सार्वजनिक हित के लिए किये जाँय, चाहे उन कामों से कर-दाता को व्यक्तिगत लाभ हो या न हो। कर सर्व-साधारण से वसूल किये जाते है, अतः जनता को यह ज्ञात होना चाहिए कि करों से प्राप्त धन किन-किन कार्यों में व्यय होता है; प्रत्येक कर जनता के प्रतिनिधियों के मतानुसार निर्धारित होना चाहिए।

कर सम्बन्धी सिद्धान्त--कर लगाने के कुछ सिद्धान्त सभ्य राज्यों में मान्य हैं, उनका पालन किया जाना चाहिए। इन नियमों का आशय संक्षेप में इस प्रकार हैं :—

(क) कर इस प्रकार निर्धारित किये जाने चाहिएँ कि प्रत्येक कर-दाता को समान स्वार्थ-त्याग करना पड़े। कर-दाता की आय जितनी अधिक हो, कुल मिला कर, उस पर उतनी ही अधिक ऊंची दर से कर लगे। जहां तक सम्भव हो, जीवनोपयोगी पदार्थों पर कर न लगाया जाय।

(ख) कर देने का समय और कर की मात्रा स्पष्ट और निश्चित रहनी चाहिए।

(ग) प्रत्येक कर ऐसे समय में और ऐसी विधि से वसूल किया जाना चाहिए कि कर देने वालों को अधिक-से-अधिक सुविधा हो; यथा, पदार्थों पर लगाया जाने वाला कर उनके उपभोग करने वालों से न लिया जाकर, थोक दुकानदारों (वेचने वालों) से वसूल कर लिया जाय। किसानों को लगान देने की सुविधा उस समय होती है, जब फ़सल तैयार हो जाय।

(घ) कर वसूल करने में मितव्ययिता का ध्यान रखा जाय; सरकारी खज़ाने में आने वाली रक़म से ऊपर कर-दाताओं के पास से कम-से-कम धन लिया लाय। ऐसे छोटे-छोटे करों का लगाया जाना उचित नहीं है, जिनके वसूल करने में वहुत खर्च तथा परिश्रम हो। कर इस प्रकार लगाये जाने चाहिएँ कि जनता

की सुख-स्मृद्धि के बढ़ने के साथ करों से बढ़ने वाली आय भी बढ़ जाय, और उसकी आर्थिक कठिनाइयों के समय करों की आय का परिमाण भी घट जाय। कर सदैव देश काल के अनुसार घटते, बढ़ते और बदलते रहने चाहिएँ।

प्रत्यक्ष और परोक्ष कर--कर दो तरह के होते हैं; प्रत्यक्ष और परोक्ष। प्रत्यक्ष कर उस कर को कहते हैं, जिसका भार उसी आदमी या संस्था पर पड़ता है, जिससे वह लिया जाता है। इसे देते समय कर-दाता यह भली भाँति जान लेता है कि वह कितना कर, और किस रूप में, सरकार को, देता है। उदाहरणवत् आय-कर और मालगुज़ारी आदि प्रत्यक्ष कर है। परोक्ष कर उस कर को कहा जाता है, जिसका भार उसके चुकाने वाले दूसरों पर डाल देते हैं। उदाहरणवत्, व्यापारी आयात या निर्यात पर जो कर देते हैं, उसे माल बेचने के समय, अपने ग्राहकों से वसूल कर लेते हैं। व्यवहारोपयोगी चीज़ों—कपड़े, नमक, शराब, अफ़ीम आदि पर लगने वाले कर परोक्ष कर हैं।

प्रत्यक्ष कर लोगों को बहुत अखरते हैं, परन्तु परोक्ष करों की भरमार होनी भी बहुत हानिकर होती है। जीवनोपयोगी पदार्थों पर लगाये हुए करों से दरिद्र-से-दरिद्र आदमी भी नहीं बच सकता। इनसे निर्धनों का कष्ट बहुत बढ़ जाता है; अतः ये कर यथा-सम्भव न लगाये जाने चाहिएँ। हाँ, विलासिता

के पदार्थों पर लगे हुए करों से यह बात नहीं होती; कारण इन पदार्थों को प्रायः अमीर लोग खरीदते हैं, और वे कर-भार सहज ही सह सकते हैं।

फीस या शुल्क—यह न्याय, शिक्षा, रजिस्टरी करने या पेटेंट देने आदि कुछ विशेष कार्यों के लिए सरकार द्वारा अनिवार्य रूप से लिया हुआ धन है। यह उसी व्यक्ति या व्यक्ति-समूह से लिया जाता है, जो उक्त किसी कार्य से लाभ उठाना चाहता है। इस का 'अनिवार्य रूप' समझने के लिए कल्पना करो कि एक आदमी को कोई अदालती डिग्री सरकार से मान्य करानी है। उसे किसी ऐसी अदालत में ही अपने मुक़द्दमे का फ़ैसला करना होगा, जो सरकार द्वारा स्थापित या अनुमोदित हो। इसी प्रकार किसी व्यक्ति की शिक्षा सम्बन्धी डिग्री, सनद या डिप्लोमा सरकार तभी मान्य करती है, जब कि उस ने सरकारी या सरकार-सम्बद्ध संस्था में शिक्षा पायी हो, या परीक्षा दी हो। इस लिए शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता को सरकार द्वारा मान्य कराने के लिए उसे उक्त संस्थाओं की फ़ीस या शुल्क देना अनिवार्य है। साधारणतया इस का परिणाम किये हुए कार्य की तुलना में कम रहता है। उदाहरण के लिए एक स्कूल के चलाने में जितना खर्च पड़ता है, उस स्कूल में पढ़ने वालों की फ़ीस उस अनुपात से कम ही रहती है। भारतवर्ष में न्याय-शुल्क खर्च की अपेक्षा कहीं अधिक है, इस से सरकार को काफ़ी आय होती है; यह अनुचित है।

करों के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। उन में और

फ़ीस में यह अन्तर है कि कर उन कामों के वास्ते लिये जाते हैं, जिन का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष से न हो, जो सब के लिए लाभदायक समझे जाते हों; इस के विपरीत, फ़ीस केवल उन व्यक्तियों से ली जाती है, जो फ़ीस के उपलक्ष्य में प्रत्यक्ष तथा व्यक्तिगत रूप से लाभ उठाते हैं।

व्यवसायिक आय—भारतवर्ष में सरकार के व्यवसायिक कार्य रेल, डाक, तार, जंगल और आबपाशी हैं, यह पहले बताया जा चुका है। यदि इन कार्यों से बहुत अधिक मुनाफ़ा होता है तो यह स्पष्ट ही है कि इनके संचालन अर्थात् प्रबन्ध आदि में जो व्यय होता है, उसकी अपेक्षा प्रजा से धन अधिक वसूल किया जाता है। कुछ आदमी इस आय को बहुत अच्छी समझते हैं, कारण कि यह उन लोगों से वसूल की जाती है, जो इसे देना सहन कर सकते हैं। परन्तु यदि फ़जूलख़र्ची होती हो या मुनाफ़ा अधिक रहता हो तो यह आय भी प्रजा को बहुत दुसह्य हो जाती है, और इससे व्यापार आदि में बाधा हो सकती है।

सरकारी आय की मदें—भारतवर्ष में सरकारी आय की मदें इस प्रकार हैं।

१—आय कर	प्रत्यक्ष कर
२—मालगुज़ारी	
३—आयात-निर्यात-कर	परोक्ष कर
४—नमक	
५—आबकारी	
६—अफ़ीम	

७—अन्य कर—देशी राज्यों का नज़राना; प्रान्तों का मनोरंजन कर।

८—स्टाम्प ९—रजिस्टरी १०—पुलिस ११—न्याय १२—शिक्षा १३—स्वास्थ्य और चिकित्सा १४—निर्माण-कार्य १५—टकसाल	फीस या शुल्क
१६—रेल १७—डाक, तार १८—जंगल १९—आबपाशी	व्यवसायिक आय

२०—सूद की आय—म्युनिसिपैलिटियों या किसानों आदि को उधार दिये हुए रुपये का सूद।

२१—सैनिक आय—सैनिक स्टोर आदि की बिक्री से आय।

२२—विविध—स्टेशनरी और रिपोर्टों की बिक्री से आय।

केन्द्रीय और प्रान्तीय आय—सरकारी आय के दो भेद किये जा सकते हैं—केन्द्रीय और प्रान्तीय। कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिनको देश भर में समान रूप से करना आवश्यक होता है; उनमें एक ही प्रकार की नीति तथा कार्य-पद्धति काम में लायी जाती है। उदाहरणवत् यह आवश्यक है कि विदेश से आने वाले, तथा यहाँ से बाहर जाने वाले माल के सम्बन्ध में एक ही

प्रकार की नीति रहे; आयात-निर्यात पर लगने वाले करों की दर में भिन्न-भिन्न प्रान्तों की दृष्टि से भेद न हो; डाक तार के नियम तथा दर सर्वत्र समान हों; सरकारी मुद्रा या सिक्का भी सब प्रान्तों में एक समान ही प्रचलित हो। ऐसे कार्यों को भारत-सरकार करती है, और उनसे होने वाली आय केन्द्रीय आय गिनी जाती है।

इसके विपरीत, कृषकों से भिन्न-भिन्न स्थानों में सरकार का सम्बन्ध एक ही प्रकार का नहीं हैं, कहीं स्थायी बन्दोबस्त है, कहीं अस्थायी; कहीं जमींदारी या ताल्लुकेदारी प्रथा है, कहीं रय्यत-वारी। अतः यह विषय प्रान्तीय सरकारों के सुपुर्द है, प्रत्येक प्रान्त में इससे होने वाली आय वहाँ की प्रान्तीय सरकार वसूल करती है। इसी प्रकार आबपाशी, जंगल और न्याय आदि सम्बन्धी आवश्यकताएँ तथा परिस्थिति भी भिन्न-भिन्न प्रान्तों की पृथक् पृथक् हैं, इन मदों से होने वाली आय प्रान्तीय समझी जाती है। हाँ, छोटे-छोटे (चीफ-कमिश्नरों के) प्रान्तों का प्रबन्ध वास्तव में केन्द्रीय सरकार करती है, अतः उनकी सब आय केन्द्रीय ही होती है।

गत वर्षों में, भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारों की कुल वार्षिक आय लगभग दो-दो सौ करोड़ रुपये रही है; लगभग १२० करोड़ रुपये की आय भारत-सरकार की, और शेष प्रान्तीय सरकारों की। प्रत्येक मद से होने वाली आय प्रति वर्ष कुछ घटती-बढ़ती रहती है।

पहले कहा जा चुका है कि केन्द्रीय सरकार जनता के प्रति बहुत ही कम उत्तरदायी है, अतः केन्द्रीय आय के नियंत्रण में लोक-प्रतिनिधियों का विशेष भाग नहीं होता। हाँ, नवीन विधान से प्रान्तीय सरकारें बहुत-कुछ उत्तरदायी हैं; उनकी आय का निश्चय या निर्धारण करने में लोक-प्रतिनिधि यथेष्ट भाग लेते हैं।

अगले अध्यायों में हम सरकारी आय की विविध मदों पर व्यौरेवार तथा आलोचनात्मक दृष्टि से विचार करते हुए यह बतलायेंगे कि वर्तमान आय की प्राप्ति कहाँ तक उचित है, तथा राष्ट्र-हित की दृष्टि से किस-किस मद से अधिक आय होनी चाहिए, तथा किस-किस मद से कम।

दसवां अध्याय

आय-कर और मालगुज़ारी

"करों का प्रबन्ध यदि अच्छा हो, करों का भार समाज के सब अंगों पर उचित रूप से पड़े, और कर इतने अधिक न हों कि समाज की कमर ही तोड़ डालें, तो समाज की आर्थिक उन्नति के साथ-साथ करों से होने-वाली आय भी बढ़ती है।"

—'आज'

करों के भेद आदि मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख पिछले अध्याय में हो चुका। अब हम आय-कर (इनकम टैक्स) और मालगुज़ारी के सम्बन्ध में विचार करेंगे। ये दोनों प्रत्यक्ष कर हैं। इन में पहला केन्द्रीय है, और दूसरा प्रान्तीय।

आय-कर——यह कर विशेषतया मुनाफे या वेतन पर लगता है। किसी भी वर्ष आय-कर उस से पिछले वर्ष की आमदनी पर लगाया जाता है। अतः कुल आय-कर और उसकी वसूली के आधार पर देश की, पिछले वर्ष की आर्थिक स्थिति का अन्दाज़ लगाया जा सकता है।

भारतवर्ष में आय-कर सन् १८६० ई० से लगने लगा है। इस समय दो हज़ार रुपये से कम आमदनी पर कर नहीं लगाया जाता, कारण, कि यह माना जाता है कि इतनी आय एक परिवार

के निर्वाह के लिए आवश्यक है। व्यक्तियों, रजिस्टरी न की हुई फ़र्मों (कोठियों) और संयुक्त परिवारों ❀ की (दो हजार रुपये या इससे अधिक) आय पर इस कर का स्वरूप वर्द्धमान है। अर्थात् जितनी आय अधिक होती है। उतनी ही कर की दर बढ़ती जाती है। उदाहरणवत् २०००) से ४९९९) रु० तक की आय पर कर प्रति रुपया पांच पाई हो तो ५०००) से ९९९९) रु० तक प्रति रुपया छः पाई, और दस हजार रुपये से ऊपर की आय पर अधिकाधिक। प्रत्येक कम्पनी, और रजिस्टरी की हुई फ़र्म से आय-कर एक निर्धारित दर से लिया जाता है।

सुपर-टैक्स योरपीय महायुद्ध के समय से लगाया गया है। यह पचास हजार या इससे अधिक की आय पर लगता है। आय-कर की भाँति इसकी दर भी वर्द्धमान है।

कुछ आदमी आय-कर देने से अंशतः या पूर्णतया बचने के लिए ठीक-ठीक हिसाब नहीं देते; वे अपनी आमदनी यथा-सम्भव कम बताते हैं। यदि उनके हिसाब को सच्चा मान कर उनकी ही बतायी हुई आमदनी पर कर लिया जाय तो सरकार की इस मद की आय में काफ़ी कमी रहे। सन् १९३६-३७ ई० की रिपोर्ट से मालूम होता है कि यदि इस विभाग के अधिकारियों

❀किसी संयुक्त परिवार की आय पर यह कर लगाते समय उस परिवार के सदस्यों की संख्या का विचार नहीं किया जाता। इससे, जो परिवार जितना बड़ा होता है, उस पर इस कर का भार उतना ही अधिक पड़ता है। अतः इसमें संशोधन होने की आवश्यकता है।

ने सतर्कता न दिखायी होती तो सरकारी खज़ाने को उक्त वर्ष तीन करोड़ रुपये की हानि होती। नागरिकों को चाहिए कि सरकार के प्रति अपने अन्याय कर्तव्यों की भाँति कर देने के कर्तव्य का भी भली भाँति पालन करे, और आय-कर से बचने लिए झूठा हिसाब न दिया करें।

आमदनी बढ़ाने के उपाय—भारतवर्ष में आय-कर और सुपर-टैक्स की मद में सरकार को अपेक्षाकृत कम ही आय होती है; कारण, यहाँ के अधिकतर निवासी बहुत निर्धन हैं, तथा यहाँ उद्योग-धन्धों और कल-कारखानों की स्थिति जैसी चाहिए, वैसी अच्छी नहीं है। स्वदेशी उद्योग-धन्धों की उन्नति होने से इस मद की आय बढ़ सकती है। इस सम्बन्ध में विशेष अन्यत्र कहा गया है। इस मद की आय की वृद्धि का एक उपाय यह भी है कि सरकार भारत की सीमा से बाहर रहने वाले उन लोगों से भी आय-कर ले जो यहाँ से सूद की आमदनी पाते हैं। वर्तमान अवस्था में सरकार प्रति वर्ष तेरह-चौदह करोड़ रुपये सूद की मद में देती है। यह अधिकतर अंगरेज़ों की आमदनी है, जो इंगलैंड में रहते हैं, और भारत सरकार को आय-कर नहीं देते। उनकी इस आमदनी पर आय-कर लगने से भारत को काफ़ी आय हो सकती है, और होनी चाहिए।

कृषि-आय-कर—सरकार की इस मद की आय में वृद्धि होने का दूसरा उपाय यह है कि कृषि से होने वाली आय पर भी

कर लगे। भारतवर्ष में अनेक ज़मींदार, ताल्लुक़ेदार और नवाबों आदि को कृषि से काफ़ी आय है, और उनको प्रायः कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता। इससे उनका जीवन बहुधा आनन्दोपभोग में ही बीतता है। उन्हें कर से मुक्त रखने से सरकार बहुत-सी आय से वंचित रहती है; उन पर कर लगाया जाना उचित ही है।

इस कर के सम्बन्ध में विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि जहाँ अन्य आय-कर केन्द्रीय सरकार की आय है, कृषि-आय-कर की आमदनी, नवीन विधान के अनुसार प्रान्तीय सरकारों को होगी। और, प्रान्तीय सरकारें एक ओर तो लगान कम करने और शराब बन्द करने के कार्यक्रम से अपनी आय घटाने का काम कर रही हैं, दूसरी ओर शिक्षा प्रचार, स्वास्थ्य रक्षा, ग्राम-सुधार, आदि अनेक जन-हितकारी कार्यों के लिए चिन्तित हैं, जिन सब के लिए काफ़ी रुपये की आवश्यकता है। ऐसी दशा में उनकी आमदनी बढ़ाने के लिए इस कर की उपयोगिता स्पष्ट है।

इस कर के विरोध में यह कहा जाता है कि जिन ज़मींदारों आदि पर यह कर-भार पड़ेगा वे पहले ही सरकार को मालगुज़ारी के रूप में कर दे रहे हैं। मालगुज़ारी कर है या नहीं, इस विषय पर यहाँ तर्क-वितर्क करने का यहाँ स्थान नहीं है, परन्तु यदि उसे कर मान ही लिया जाय तो क्या एक व्यक्ति से कई कर नहीं लिये जाते, जब कि वे कर भिन्न-भिन्न प्रकार के हों। आय-कर

देने वाले हैसियत टैक्स या गृह-कर ('हाउस-टैक्स') आदि देते ही हैं। मालगुज़ारी यदि कर है तो वह भूमि पर है, और कृषि-आय-कर आय पर है। दोनों कर एक प्रकार के नहीं है, भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं। अतः किसी व्यक्ति पर ये दोनों कर लगना कदापि अनुचित नहीं है।

कृषि-आय-कर पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि इससे स्थायी बन्दोबस्त और सरकारी प्रतिज्ञा की बात जाती है। परन्तु विचार करने पर विदित होगा कि प्रान्तीय सरकारों को नित्य नये जन-हितकारी कार्य करने हैं या उनका क्षेत्र बढ़ाना है, और साथ ही जनता पर कर-भार भी उचित मात्रा में ही रखना है तो स्थायी बन्दोबन्त का संशोधन आवश्यक ही है। ज़मींदार आदि किसी श्रेणी विशेष के स्वार्थ के लिए जन-साधारण के हितों की बलि नहीं दी जानी चाहिए। रही, सरकार की पूर्व प्रतिज्ञा की बात, तो ऐसा निश्चय नहीं किया हुआ है कि सरकार ज़मींदारों से आवश्यकता होने पर किसी प्रकार का कर लेगी ही नहीं। सन् १८६१ ई० में सरकार ने शिक्षा-कर लगाते समय स्थायी बन्दोबस्त वालों को मुक्त नहीं किया था।

कुछ आदमी कृषि-आय-कर को गैर-क़ानूनी बताते हैं। पर स्मरण रहे कि सन् १९२४ ई० की कर-जांच-समिति ने अपनी एक सिफ़ारिश यह भी की थी कि खेती को आमदनी पर भी

आय-कर उसी दर से लगाना आवश्यक है, जिस दर से, वह अन्य आय पर लगता है। पुनः सन् १९३५ ई० के विधान में प्रान्तीय सरकारों को कृषि-आय-कर प्राप्त करने का अधिकार दिया गया; यदि यह कर गैर-कानूनी होता, तो विधान में ऐसी व्यवस्था न की जाती। इस प्रकार इस कर को गैर-क़ानूनी कहने में कुछ सार नहीं है।

बिहार में, जहां कि ज़मीदारों की संख्या और प्रभाव पर्याप्त है, कांग्रेसी मन्त्री-मंडल ने कृषि-आय-कर लगा कर एक उचित कार्य में अपने साहस का परिचय दिया है, वहाँ पाँच हज़ार रुपये से अधिक सालाना मालगुज़ारी पर यह कर लगाया गया है। अभी इस कर की सीमा अधिक है, जब कि आय-कर के लिए दो हज़ार से कम की ही आय कर-मुक्त है तो कृषि-आय-कर के लिए तो पाँच सौ रुपये तक की ही आमदनी की छूट रखी जानी चाहिए; कारण कि कृषि की आय देहातों से होती हैं, जहां कि जीवन-निर्वाह अपेक्षाकृत कम रुपये में ही हो सकता है। पुनः अभी सहूलियत के लिए बिहार में इस कर की दर भी बहुत कम रखी है; यह क्रमशः बढ़ानी होगी।

आशा है बिहार के उदाहरण से प्रभावित हो कर अन्य प्रान्तीय सरकारें भी अपने-अपने क्षेत्र में कृषि-आय-कर लगाने की व्यवस्था करेंगी।

मालगुज़ारी—सरकारी आय का यह साधन अति प्राचीन

है। व्यवसाय-हीन और कृषि-प्रधान देशों में अब भी इसका बड़ा महत्व है। भारतवर्ष में मालगुज़ारी के अन्तर्गत निम्नलिखित आय सम्मिलित हैं:—साधारण मालगुज़ारी, सरकारी इस्टेट की बिक्री, परती ज़मीन की बिक्री, ज़मीन का महसूल तथा अबवाब, और इस विषय की विविध आय। साधारण माल-गुज़ारी में सर्वसाधारण से प्राप्त मालगुज़ारी के अतिरिक्त गत वर्षों की बकाया की आमदनी, सरकारी इस्टेट की मालगुज़ारी और जंगल की मालगुज़ारी शामिल होती है। विविध आय में मुख्य आमदनी यह होती है—मालगुज़ारी के दफ़्तर की आमदनी, मालगुज़ारी-अदालतों से किया हुआ जुर्माना, कुछ जगहों में ख़ास पटवारी रखने के उपलक्ष्य में होने वाली आमदनी, खेतों की हद ठीक करने के लिए अमीनों की फ़ीस, उन जंगलों या ज़मीनों से खनिज पदार्थों की आय जो जंगल-विभाग के प्रबन्ध में न हों; इत्यादि।

प्रान्तीय सरकारों की आमदनी का मुख्य साधन मालगुज़ारी है, बहुधा उनकी कुल आय का लगभग आधा भाग इसी से प्राप्त होता हैं। ब्रिटिश भारत में कहीं तो सरकार यह आय सीधे किसानों से ही वसूल करती है, और कहीं ज़मींदारों या ताल्लुकेदारों आदि के द्वारा। दूसरी दशा में ज़मींदार आदि किसानों से लगान वसूल करते है, और उसका निर्धारित भाग सरकार को मालगुज़ारी के रूप में देते हैं। मालगुज़ारी कहीं स्थायी रूपसे निर्धारित है, और कहीं कुछ परिमित समय के लिए।

इस प्रकार ब्रिटिश भारत में तीन तरह का वन्दोवस्त है:—(१) ज़मींदारी; स्थायी प्रवन्ध—बंगाल प्रान्त में, विहार के $\frac{5}{6}$ भाग में, एवं आसाम के आठवें और संयुक्त प्रान्त के दसवें भाग में। (२) ज़मींदारी; अस्थायी-प्रबन्ध—संयुक्त-प्रान्त में ३० वर्ष, और पंजाब तथा मध्य प्रान्त में २० वर्ष के लिए मालगुज़ारी निश्चित कर दी जाती है। गाँववाले मिल कर इसे चुकाने के लिए उत्तरदायी होते हैं। (३) रय्यतवारी प्रवन्ध; वम्बई, सिंध, मदरास, और आसाम में, एवं विहार के कुछ भाग में। इन स्थानों में सरकार सीधे काश्तकारों से सम्बन्ध रखती है। वम्बई, मदरास में ३० वर्ष में तथा अन्य प्रान्तों में जल्दी-जल्दी वन्दोवस्त होता है ।

नये वन्दोवस्त में प्राय: हर जगह सरकारी मालगुज़ारी बढ़ जाती है। सरकार मालगुज़ारी नक़दी के रूप में लेती है, जिन्स (उपज) के रूप में नहीं। वह उसकी दर भूमि के गुण और स्थिति की जांच करके या पैदावार का परता लगा कर नियत करती है, यह परता वन्दोवस्त के साल का लगाया हुआ होता है। बहुधा ऐसा हो सकता है कि वन्दोवस्त के साल फ़सल अच्छी हो, अथवा कारगुज़ारी दिखाने वाले अफ़सर उसके अनुमान में अत्युक्ति कर दें, और अभागे किसानों पर कितने-ही वर्षों के लिए सरकारी मालगुज़ारी का भार बढ़ जाय। अति-वृष्टि, अनावृष्टि आदि से फ़सल खराब हो जाने पर जब पैदावार

कम हो जाती है तब भी सरकारी मालगुज़ारी प्रायः पूर्व निश्चय के अनुसार ही देनी पड़ती है। कभी-कभी सरकार मालगुज़ारी का कुछ अंश छोड़ भी देती है, परन्तु वह छूट नुक़सान के हिसाब से बहुधा कम होती है।

मालगुज़ारी (एवं लगान) की अधिकता के कारण अधिकांश कृषकों की, जो भारतीय जनता का बृहदंश हैं, इस समय बुरी दशा है। उन्हें मालगुज़ारी अपनी मज़दूरी में से देनी पड़ती है, इसलिए उनको कई महीनों तक अध-भूखे रहना पड़ता है।

सन् १९२४ ई० की कर-जाँच-समिति ने यह स्वीकार किया है कि 'खेती के लागत-ख़र्च में किसान और उसके कुटुम्ब के उन लोगों की मज़दूरी सम्मिलित नहीं की जाती, जो खेती पर काम करते हैं।' यदि लागत-खर्च ठीक लगाया जाय तो बहुत-से खेत ऐसे निकलेंगे, जिनकी आमदनी लागत-खर्च से कम होगी। इस प्रकार के खेत जोतनेवालों से तो मालगुज़ारी या लगान लिया जाना किसी भी दशा में उचित नहीं कहा जा सकता।

पुनः सब किसानों से (रय्यतवारी प्रान्तों में), और सब जमींदारों से (जमींदारी-प्रथा वाले प्रान्तों में), बिना उनकी हैसियत का विचार किये, लगान का ५०% मालगुज़ारी लिया जाना अनुचित है। जैसे-जैसे लगान की आमदनी अधिक हो, वैसे-वैसे मालगुज़ारी की दर बढ़नी चाहिए। उदाहरणार्थ एक हज़ार रु० की आमदनी

तक कुछ मालगुज़ारी न ली जाय; और उससे अधिक पर निम्नलिखित दर से ली जाय:—

१०००) से	२००० तक की आय पर	...	१०%
२०००) ,,	३०००) ,, ,,	...	१५%
३०००) ,,	५०००) ,, ,,	...	२५%
५०००) ,,	१०,०००) ,, ,,	...	५०%
१०,०००),,	अधिक आय पर	...	७५%

अस्तु, किसानों और छोटे ज़मीदारों के उद्धार के लिए यह आवश्यक है कि उनकी ज़मीन उनकी ही मौरूसी जायदाद समझी जाय, और उन से मिलने वाली सरकारी मालगुज़ारी में काफ़ी कमी हो। हर्ष की बात है कि अब प्रान्तीय सरकारें इस ओर ध्यान दे रही हैं। संयुक्त-प्रान्त को सरकार ने कुछ नियमों के साथ लगान और मालगुज़ारी में ३३ प्रतिशत कम करने का विचार किया है। इसी प्रकार अन्य प्रान्तों में भी, जहां स्थायी बन्दोबस्त नहीं है, लगान और मालगुज़ारी क्रमशः कम की जारही है।

जमींदारी प्रथा—मालगुज़ारी के प्रसंग में यह जान लेना उपयोगी है कि यहाँ जमींदारी प्रथा कब से और किस प्रकार प्रचलित हुई, इसके विरुद्ध इस समय क्या-क्या शिकायतें है, और इसे उठा देने के सम्बन्ध में क्या विचार हो रहा है। इन प्रश्नों पर हमने विस्तारपूर्वक अपने 'भारतीय अर्थशास्त्र' में लिखा है। यहाँ संक्षेप में ही कुछ बातें कहनी हैं। 'ज़मींदार' शब्द का प्रयोग यहां मुसलमानों के समय से होने लगा, पर

उस समय वह सरकारी नौकर ही था, न कि किसानों और सरकार के बीच का दलाल। आधुनिक अर्थ में ज़मींदारी की उत्पत्ति ईस्ट इंडिया कम्पनी के समय में हुई। सम्भवतः इसका मुख्य हेतु यह था कि सर्व-साधारण पर अपनी सत्ता स्थापित करने के लिए सरकार (कम्पनी) ने कुछ लोगों का भूमि पर विशेष अधिकार मान लिया, जिससे ये लोग अपने स्वार्थवश सरकार का साथ दें, तथा भारतवर्ष में अंगरेज़ी राज्य की जड़ जमाने में सहायक हों।

अधिकतर ज़मींदारों ने किसानों के प्रति कैसा अनुचित व्यवहार किया, और विशेषतया ग़ैर-मारूसी काश्तकारों पर नज़राने, बे-दखली, और रसद बेगार आदि के रूप में क्या-क्या अत्याचार किया यह अब इतिहास का विषय है। यद्यपि अब लोक-जागृति के साथ इन बातों में कमी हो गयी है, अधिकांश ज़मींदार इस समय भी समाज और देश के लिए अपनी उपयोगिता का परिचय नहीं दे रहे हैं। अतएव वर्तमान दशा में, लोक-मत इस विषय में अधिकाधिक प्रबल होता जा रहा है कि ज़मींदारों को कुछ मावज़ा या प्रतिफल (जिसकी मात्रा देश-काल के अनुसार निश्चित की जाय) देकर, ज़मींदारी-प्रथा का अन्त किया जाय। परन्तु जैसा कि श्री० महेशचन्द्र जी बी. एस-सी. ने 'वीणा' में लिखा है, अगर गुड़ देने से किसी की मृत्यु हो जाय तो उसे ज़हर देने की क्या ज़रूरत! ज़मींदारों की ज़मींदारी छीनने का सब से आसान नुस्खा है, इन पर मृत्यु-कर ('डैथ-ड्यूटी'), विरासत कर, और कृषि-आय-कर लगाना। और, जब तक पहली दो दवाइयां न मिलें, तीसरी को ही घोट छान कर देना चाहिए। कृषि-आय-कर के सम्बन्ध में हम इसी अध्याय में, पहले विचार कर चुके हैं।

जायदाद और पूँजी पर कर—भारतवर्ष में जायदाद और पूँजी पर कर अभी तक नहीं लगने लगा है, तथापि जन-

हिकारी कार्यों के लिए प्रान्तीय सरकारों को आय-वृद्धि की अत्यन्त आवश्यकता होने से इस ओर अनेक विचारशीलों का ध्यान आकर्षित हो रहा है। इसलिए इसका विचार करना उपयोगी है। यह कर लगाना बहुधा बहुत कठिन होता है। स्थिर जायदाद के मूल्य का अनुमान करना दुस्तर है। लोग छल-कपट से इसके कर से बचने के लिए इसे छिपा लेते हैं। इसलिए भूमि और मकान के अतिरिक्त यह कर मृत्यु-कर या विरासत-कर के स्वरूप में ही लगाया जाता है। जब किसी आदमी की जायदाद उसके मरने पर उसके उत्तराधिकारी को मिलती है और उस पर कर लगाया जाता है, तो उसको मृत्यु-कर ('डेथ ड्यूटी') या विरासत कर ('सक्सेशन ड्यूटी') कहते हैं। यह प्रायः बहुत हल्के और क्रमशः वर्द्धमान रखे जाते हैं। यह उन आदमियों पर पड़ते हैं, जो उस जायदाद के उत्पादक नहीं हैं जिस पर कर लगाये जाते हैं, इसलिए यह उन्हें बहुत अखरते नहीं।

ग्यारहवाँ अध्याय

आयात-निर्यात-कर

"जब भारतीय राष्ट्र भारतीय सरकार की रक्षा में सौंपी हुई वस्तु है, तो भारत सरकार का, भारत की भलाई के सिवाय कोई दूसरा मतलब रखना, या राज करने वाली जाति के अधिक लाभ के लिए उस की ओर झुक जाना घोर विश्वास का अपराधी होना है।"

—डब्ल्यू० ई० एस० हालैंड

पिछले अध्याय में आय-कर और मालगुज़ारी के सम्बन्ध में लिखा गया। ये दोनों प्रत्यक्ष कर हैं। अब इस अध्याय में आयात-निर्यात-कर का विचार किया जाता है। यह कर केन्द्रीय है, और परोक्ष करों में प्रमुख है।

इस कर की आय की कमी मुक्त-द्वार-व्यापार-नीति— यद्यपि भारत-सरकार को इस कर से, अब लगभग पचास करोड़ रुपये प्रति वर्ष मिलते हैं, और उस की यह आय अन्य किसी एक मद की आय की अपेक्षा अधिक है, तथापि अन्य अनेक देशों की इस मद की आय से यहां यह आय बहुत कम है। पहले तो यह और भी कम थी। इस का कारण यह था कि योरपीय महायुद्ध से पूर्व भारत-सरकार आयात की वस्तुओं पर बहुत कम कर लगाती थी।

कच्चे पदार्थों और मशीनों आदि पर कुछ कर न था। अस्त्र-शस्त्र, युद्ध-सामग्री और शराब तथा तम्बाकू पर विशेष कर लगाया जाता था; चीनी, कैंची, चाकू, घड़ी, साबुन और स्टेशनरी आदि पर इन के मूल्य का प्राय: ५ फ़ी सदी कर लगता था, वह भी आय के लिए न कि स्वदेशी उद्योग धन्धों के संरक्षण के लिए। इस बात को यों भी कह सकते हैं कि पहले सरकार की प्राय: मुक्त-द्वार-व्यापार-नीति थी। [इस के विपरीत, जब आयात-कर लगाने का उद्देश्य विदेशी माल की आयात घटाना और स्वदेशी उद्योग-धन्धों को उत्तेजना देना होता है, तो उसे संरक्षण-नीति कहते हैं।]❀

मुक्त-द्वार-व्यापार-नीति से, विदेशी माल मँहगा नहीं होने पाता, वह सस्ता रहता है, इस लिए उस की खपत अधिक होती है। इस से कल कारखाने वालों को कच्चे माल की आयात करने में लाभ रहता है; इस के विपरीत, तैयार माल मंगाने वाले देश को हानि रहती है, कारण, वहाँ के उद्योग-धन्धों की उन्नति नहीं होने पाती। भारतवर्ष में सरकार की इस नीति से यहाँ विदेशी वस्तुओं का प्रचार बढ़ा, यहाँ का असंख्य रुपया (या अन्न रूई आदि कच्चा माल) बाहर गया और इङ्गलैंड को खूब नफ़ा हुआ। इस नीति के पक्ष में कहा गया कि मुक्त-द्वार-व्यापार से भारत के

❀ 'व्यापार-नीति' का विशद विवेचन हमारे 'भारतीय अर्थशास्त्र' में है।

गरीब लोगों को (विदेशी) कपड़ा सस्ता मिलता है। परन्तु यहाँ के उद्योग-धन्धों के नष्ट होने से जो अपरिमित हानि हुई है, उस की तुलना में यह लाभ नगण्य है। पुनः, सस्ते दामों का जो फ़ायदा मिला वह अधिकतर उन लोगों को जो बढ़िया विलायती वस्त्र या अन्य विलासिता के सामान का उपयोग करते हैं। इन में, अधिकाँश योरपियन तथा सम्पन्न या शौकीन भारतीय होते हैं; सर्व-साधारण तो अपने जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं की ही यथेष्ट पूर्ति करने में असमर्थ रहते हैं।

देशी माल पर कर—जब कोई राज्य मुक्त-द्वार-व्यापार-नीति के पक्ष में हो और आय के वास्ते किसी विदेशी वस्तु पर कर लगाये तो उसे स्वदेश की भी उस प्रकार की वस्तु पर कर लगाना होता है। भारतवर्ष में यहाँ के कते सूत और यहाँ के बुने हुए कपड़े पर घातक कर इसी विचार से शुरू हुआ। सन् १८९४ ई० में भारत-सरकार ने विलायती कपड़ों पर ५ फ़ी सैकड़ा कर लगाया, तो इस के साथ ही देशी सूत पर और देशी मिलों में तैयार होने वाले कपड़ों पर भी इतना ही कर लगा दिया। लंका-शायर के व्यापारियों के असंतुष्ट होने के कारण सन् १८९६ ई० में विदेशी कपड़ों पर महसूल ५) से घटा कर ३॥) सैकड़ा किया गया, तब भारत की मिलों में बने हुए कपड़ों पर भी इतना ही कर निर्धारित किया गया।

नीति में परिवर्तन; संरक्षण—योरपीय महायुद्ध काल में तथा उसके बाद सरकार की व्यापार-नीति में कुछ परिवर्तन हुआ;

सन् १९१६ ई० में यहां की औद्योगिक परिस्थिति की जाँच करने के लिए कमीशन बैठाया गया। सन् १९२१ ई० में एक आर्थिक जाँच-समिति नियुक्त हुई। इसने सिफ़ारिश की कि भारतीय उद्योग-धन्धों की रक्षा के लिए बाहर से आने वाले माल पर विशेष कर लगना चाहिए, तथा भारत में बनने वाले माल पर कर न लगाना चाहिए। पश्चात् टेरिफ-बोर्ड (अयात-निर्यात-कर-समिति) की स्थापना हुई और उसकी सिफ़ारिश के अनुसार क्रमशः लोहे, फ़ौलाद के सामान, काग़ज़, कपड़े और चीनी को संरक्षण दिया गया अर्थात् इन वस्तुओंकी आयात पर ऐसा कर लगाया गया कि ये यहाँ की बनी वस्तुओं से सस्ती न रह जाँय, कुछ मँहगी ही हों। सन् १९२६ ई० में भारत में बनने वाले रुई के माल पर से कर उठा दिया गया। परन्तु, बत्तीस वर्ष तक इस कर के लगे रहने से भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की जो चिन्तनीय क्षति हुई है, वह तो हो ही चुकी। इसका प्रतिकार करने की बात ब्रिटिश सरकार क्यों सोचने लगी !

साम्राज्यान्तर्गत-रियायत-नीति—सन् १९३० ई० में इंगलैंड से आने वाले रुई के सामान पर १५ प्रतिशत, और ग़ैर-ब्रिटिश अर्थात् अन्य देशों से आने वाले सामान पर ५ प्रतिशत और अधिक, अर्थात् २० प्रतिशत कर लगाया गया। पीछे यह कर इंगलैंड के माल पर २५ प्रतिशत और गैर-ब्रिटिश माल पर तीस प्रतिशत बैठाया गया। यह बात साम्राज्यान्तर्गत रियायत की नीति के अनुसार थी। इस का आशय यह है कि

ब्रिटिश साम्राज्यान्तर्गत देश पारस्परिक व्यापार में खास रियायत करें, एक दूसरे की आयात-निर्यात पर, ग़ैर-ब्रिटिश माल की अपेक्षा कम कर लगावें। ओटावा में साम्राज्य-परिषद हुई, उसमें तीन वर्ष के लिए इस नीति का समझौता हुआ, परन्तु यह भारतवर्ष के लिए बहुत हानिकर थी; इसका यहाँ घोर-विरोध हुआ। बात यह है कि यहाँ से इंगलैंड और अन्य देशों को कच्चा माल जाता है, जिसकी आयात पर कोई औद्योगिक देश कर नहीं लगाता। इसलिए भारतवर्ष के माल को इंगलैंड या उसके उपनिवेशों में रियायत मिलने से इस देश को कोई लाभ नहीं होता। अब भारतीय आयात की बात लीजिए। यहाँ दो-तिहाई से अधिक माल ब्रिटिश साम्राज्य के बाहर से आता है, इस पर अधिक कर लगाने से भारतीय जनता के लिए वह माल मँहगा हो जाता है, और देश की हानि होती है। इस प्रकार साम्राज्यान्तर्गत-रियायत की नीति से भारतवर्ष को कुछ लाभ नहीं है। भारतीय व्यवस्थापक सभा के निरन्तर विरोध के कारण अन्ततः ओटावा के समझौते का अन्त होगया।

सरकार और लोक-मत--भारतीय लोकमत संरक्षण-नीति को क्रमशः अग्रसर करने के पक्ष में रहा है। भारत-सरकार ने सन् १९२२ ई० से इस ओर ध्यान दिया, और बहुत मंद-गति से क़दम बढ़ाया। इधर कुछ समय से वह सीमित संरक्षण नीति से भी पीछे हट रही है। टैरिफ़ बोर्ड की सिफ़ारिश होते हुए भी

उसने शीशे के व्यवसाय का संरक्षण न किया। सन् १९३६ ई० में सरकार ने इंगलैंड से भारत में आने वाले सादे एवं रंगीन सूती कपड़े पर संरक्षण-कर पच्चीस प्रति सैकड़ा से घटा कर बीस प्रति सैकड़ा कर दिया। साथ ही उसने टेरिफ़ बोर्ड को स्थायी रूप से रखना बन्द कर दिया। आवश्यकता होने पर वह किसी विशेष उद्योग धन्धे के लिए उसे नियुक्त कर देती है। सन् १९३७ ई० में शक्कर के लिए बोर्ड की नियुक्ति की गयी थी; पर उसकी रिपोर्ट सरकार के अनुकूल न होने से, प्रकाशित नहीं की गयी। यह स्पष्टतः ब्रिटिश माल का पक्षपात है; और है, भारत के उद्योग धन्धों के संरक्षण के विरुद्ध व्यापार-नीति। आवश्यकता है कि सरकार संरक्षण-नीति का अवलम्बन जारी रखे; समस्त विदेशी तैयार पदार्थों की आयात पर एवं यहाँ से बाहर जाने वाले कच्चे पदार्थों पर भी खूब कसकर कर लगावे, जिससे विदेशी माल यहाँ बहुत अधिक मँहगा होने के कारण उसकी आयात कम हो, और स्वदेशी उद्योग-धन्धों को उत्तेजना मिले।

वर्तमान अवस्था में भारत-सरकार का संगठन ऐसा है कि वह ब्रिटिश हितों को प्रधानता देती है। यदि किसी समय, यहाँ के लोक-मत से प्रभावित होकर वह ऐसा आयात-निर्यात-कर लगाना भी चाहे, जिससे भारत का हित होता हो, किन्तु ब्रिटिश स्वार्थों को धक्का पहुँचता हो, तो वह ऐसा कर नहीं लगा सकती। स्वयं ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेश इंगलैंड के माल पर स्वेच्छा-

पूर्वक कर लगा सकते और लगाते हैं,हैं। परन्तु भारत-सरकार को ऐसा करने की स्वाधीनता नहीं है। भारत से बाहर जाने वाले माल के सम्बन्ध में भी यहाँ सरकार को पहले इंगलैंड के हित का ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रकार भारत सरकार न तो यहाँ के उद्योग धन्धों की उन्नति में ही यथेष्ट सहायक हो सकती है, और न आयात-निर्यात-कर की आय ही काफ़ी बढ़ा सकती है। भारतीय शासन विधान में समुचित परिवर्तन होने पर अर्थात केन्द्रीय सरकार के, लोक-प्रतिनिधियों के प्रति पूर्ण रूप से उत्तर-दायी होने पर ही यहाँ की आयात-निर्यात-कर-नीति राष्ट्र-हित-साधक होगी।

बारहवाँ अध्याय

नमक-कर और आबकारी

" हमारी इस गरीबी की हालत में, नमक पर कर लगाने का अर्थ होता है भूखे मरने वाले, दीन-हीन प्राणियों को भी कर देने के लिए मजबूर करना, अर्थात् उन के आधे पेट भोजन में भी कुछ कम कर देना। "

"यदि हम मादक पदार्थों के सेवन में द्रव्य नष्ट करते रहें तो हमारी वास्तविक दरिद्रता कैसे दूर हो सकती है !" —' स्वदेश '

नमक-कर; इस का अनौचित्य—भारतवर्ष में किसी भी भी कर का ऐसा प्रबल, व्यापक और संगठित विरोध नहीं हुआ,

जैसा नमक-कर का हुआ। इसी कर के विरुद्ध सन् १९३० ई० में महात्मा गान्धी के नेतृत्व में सत्याग्रह किया गया था। यह कर गिरे हुए को निर्दयता-पूर्वक ठोकर लगाने के समान है। बात यह है कि नमक एक जीवनोपयोगी पदार्थ है। यह भोजन की अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। इस के कर का भार ग़रीब से ग़रीब आदमी पर भी पड़ता है। नमक तैयार करने का ख़र्च बहुत थोड़ा होता है, कुछ ख़र्च किराये में होता है। इस लागत से कई गुना इस पर कर लगाया जाता है। कर के कारण, यह सस्ता पदार्थ बहुत मँहगा हो जाता है। ऐसी अवस्था में ग़रीब आदमी, जो पेट-भर भोजन भी नहीं पाते, नमक का इस्तेमाल अपनी आवश्यकता से कम करते हैं, और बीमार रहते हैं।

दरिद्र किसान अपने पशुओं को तो काफ़ी मात्रा में नमक दे ही कैसे सकते हैं! फल-स्वरूप उन के स्वास्थ्य को भी हानि पहुँचती है। इस प्रकार इस कर का अनुचित होना स्वयं सिद्ध है। इसी लिए इस कर का यहां इतना विरोध किया जाता है।

भारत में विदेशी नमक—स्मरण रहे कि यद्यपि भारतवर्ष में विशाल समुद्र-तट, नमक की झील, तथा नमक के पहाड़ होने के कारण, यहाँ जनता की नमक की आवश्यकता सहज ही पूरी हो सकती है, तथापि यहाँ कुछ नमक बाहर से भी आता है। इसका कारण सरकार की इस कर सम्बन्धी नीति है। सरकार

स्वाभाविक रूप से पाये जाने वाले या सहज ही बनाये जा सकने वाले इस पदार्थ का जनता को स्वेच्छा-पूर्वक उपयोग नहीं करने देती। वह इस पर अपना एकाधिकार रखती है, और खूब भारी कर लगाती है। उधर, विदेशी कम्पनियों को विलायती तैयार माल लाने के लिए जितने जहाज़ों की ज़रूरत होती है, यहाँ से कच्चा माल ले जाने के लिए उनसे अधिक जहाज़ लाने पड़ते हैं। जहाज़ों को ख़ाली लाना कठिन है। अतः वे इन अधिक जहाज़ों में नमक (तथा कोयला आदि वज़नी सामान) नाम-मात्र के किराये पर ले आती है, उसे वे आयात-कर देकर भी भारत के नमक से सस्ते दामों पर बेच सकती हैं, और बेचती हैं।

नमक-कर की दर—इस कर की आय केन्द्रीय है। सन् १८८२ ई० से पहले भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस कर की दर में अन्तर था; उस वर्ष सरकार ने सब जगह दो रुपये मन कर लगाया। सन् १८८८ ई० में यह ढाई रुपये कर दिया गया, बाद में यह क्रमशः घटाया गया। सन् १९०३ ई० में २) रु० हुआ, सन् १९०५ ई० में १।) और सन् १९०७ ई० में १) रु० मन रहा। सन् १९१६ ई० (महायुद्ध-काल) में अन्यान्य करों की वृद्धि के साथ यह भी बढ़ा, और १) की जगह १।) मन हो गया। सन् १९२२-२३ ई० (शान्ति-काल) का बजट उपस्थित करते हुए राजस्व-सदस्य ने अन्यान्य करों में फिर इसे बढ़ाने का प्रस्ताव किया था। परन्तु व्यवस्थापक सभा के विरोध के कारण उस

वर्ष यह न बढ़ सका। सन् १९२३-२४ के बजट में सरकार ने, व्यवस्थापक सभा के मत की नितान्त अवहेलना करके इस कर को बढ़ा दिया, इसे २।।) प्रति मन कर दिया। इस समय यह कर १।) प्रति मन है। भारत-सरकार को इससे लगभग पन्द्रह करोड़ रुपये प्रति वर्ष मिलते हैं।

विचारणीय बात—कहा जाता है कि यह कर अंगरेज़ों के शासन से पहले भी लगता था। परन्तु उस समय आदमी अपने उपयोग के लिए नमक स्वतंत्रता-पूर्वक बना सकते थे; एक जगह से दूसरी जगह ले जाने की दशा में ही कर लगता था। साथ ही, इस कर के वसूल करने में आज-कल जैसी कठोरता नहीं होती थी। फिर, उस समय सब करों का भार मिल कर बहुत कम ही होता था; आज कल यह भार अत्यन्त अधिक है।

भारतीय नेताओं ने ही नहीं, भारतीय जनता की दरिद्रता से परिचित विदेशी विद्वानों ने भी इस कर को अनुचित और अन्याय-पूर्ण बताया है। श्री० रेमसे मेगडोनल्ड ने लिखा है कि "नमक का कर तो जुल्म है, और धन की लूट है। यदि प्रजा इसे समझती तो उसमें बेचैनी पैदा होजाती।"

यदि भारत-सरकार भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी होती, तो उसे यह अत्यन्त असह्य कर कभी का उठा देना पड़ता। परन्तु सहृदयता का भी तकाजा है कि वह लोक-मत का आदर करके तुरन्त ही इसे उठा दे।

आबकारी-कर—अफ़ीम के विषय में आगे कहा जायगा। उसे छोड़कर अन्य मादक पदार्थों पर लगाया जाने वाला कर आबकारी-कर कहलाता है। यह कर प्रान्तीय है और भांग, चरस, शराब आदि मादक पदार्थों पर लगाया जाता है। यहाँ मादक पदार्थों को बनाने या तैयार करने का सरकार को प्राय: एकाधिकार है। इनकी बिक्री से जो आय होती है, उसमें से उत्पादक व्यय निकलने पर जो शेष रहे, वह सरकारी मुनाफ़ा होता है, और आय में सम्मिलित होता है। इस मद का ब्यौरा यह है—लाईसेंस, डिस्टिलरी (शराब की भट्टी) की फीस, शराब और अन्य मादक पदार्थों की बिक्री पर महसूल, आबकारी विभाग का अफ़ीम की बिक्री से लाभ, मादक पदार्थों के सेवन सम्बन्धी जुर्माना, आदि।

विगत वर्षों में इस मद की आय में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही थी, प्रान्तीय सरकारों ने अपनी आय घटने की आशंका के कारण, मादक पदार्थों के प्रचार को रोकने का विशेष प्रयत्न नहीं किया। परन्तु अब सन् १९३५ ई० में प्रान्तीय सरकारों, और उनमें से भी विशेषतया कांग्रेसी सरकारों ने मादक वस्तु-निषेध के सम्बन्ध में अपनी स्पष्ट नीति घोषित कर दी और तदनुसार क्रमशः कार्य करना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक प्रान्त के कुछ-कुछ ज़िलों में मद्य-पान-निषेध का प्रयोग उत्साह-पूर्वक किया जाने लगा, और यद्यपि साधारण आदमियों को जब ऐसी आदत एक बार पड़ जाती है, तो उन्हें उसे छोड़ने में बहुत

कठिनाई का अनुभव होता है, तथापि उपर्युक्त प्रयोग का खूब स्वागत हुआ और लोकमत की सहानुभूति के कारण उसमें आशातीत सफलता हो रही है। अस्तु, प्रान्तीय (कांग्रेसी) सरकारों की बर्तमान नीति से शीघ्र ही देश में मादक पदार्थों का सेवन अत्यन्त कम रह जायगा; आदमी विशेषतया औषधियों आदि के वास्ते ही इनका सेवन करने वाले रहेंगे। इससे निस्सन्देह इस मद की सरकारी आय कम होगी, और सम्भव है निरीक्षण-व्यवस्था के लिए कुछ खर्च भी बढ़े। परन्तु सरकार की इस हानि की पूर्ति भी, अभी नहीं तो कालान्तर में अवश्य होगी, जब कि नशे की आदतें छोड़ने पर लोगों का खर्च कम होगा, और उनकी शक्ति का ह्रास रुक कर, उनकी कार्यक्षमता तथा उसके फल-स्वरूप उनकी आय बढ़ेगी। जनता की आय बढ़ने से, सरकार की आय की वृद्धि होना अवश्यम्भावी है।

इस प्रसंग में एक बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है। शराब की आदत छुड़ाने के लिए अनेक कार्यकर्ता तथा अधिकारी, लोगों को चाय पीने के लिए उत्साहित करते हैं। लोगों में चाय पीने का शौक वैसे ही बढ़ता जा रहा था, अब इसे यह उत्तेजना और मिलने लगी। यह कहा जा सकता है कि शराब की अपेक्षा चाय कम नशा करती है, परन्तु इससे भी तो इनकार नहीं किया जा सकता कि आखिर है तो चाय भी एक उत्तेजक पदार्थ ही। यह मनुष्य की शक्ति उसी प्रकार बढ़ाती है, जैसे दुर्बल घोड़े की शक्ति को चाबुक या हँटर बढ़ाता है। शराब तो

इने-गिने व्यक्ति ही पीते हैं, पर चाय का तो घर-घर में प्रवेश होता जा रहा है। इस प्रकार कुल मिला कर राष्ट्र का काफ़ी द्रव्य एक अनावश्यक पदार्थ के सेवन में खर्च होगा; इसे बचाने की ओर यथेष्ठ ध्यान दिया जाना चाहिए।

अफीम-कर——अब से तीस वर्ष पहले अफ़ीम की, चीन आदि देशों में खूब निर्यात होती थी, और भारत-सरकार को इस मादक पदार्थ के कर से खूब आमदनी होती थी। अब भारतवर्ष से, औषधि के रूप के सिवाय, इसकी कहीं निर्यात नहीं होती; फल-स्वरूप इस मद की आय भी बहुत ही कम; पहले की अपेक्षा तो नगण्य-सी ही (लगभग ५० लाख रुपये वार्षिक) होगयी है। इधर, जैसा कि ऊपर कहा गया है, प्रान्तीय सरकारें भी मादक पदार्थों का उपयोग यथा-सम्भव बन्द करने के लिए प्रयत्न कर रही हैं, इससे अफ़ीम-कर का आय के रूप में रहा-सहा महत्व भी कम होने वाला ठहरा; और यह उचित ही है।

अन्य करों की आय——ऊपर सरकार के मुख्य-मुख्य परोक्ष करों के विषय में कहा गया है। इसके अतिरिक्त, केन्द्रीय सरकार को कुछ आय तो देशी राज्यों से मिलने वाले नज़राने से होती है, जो प्रायः उन संधियों के अनुसार मिलता है, जिन से पूर्व काल में देशी राज्यों के कुछ स्थानों का ब्रिटिश भारत के स्थानों से परिवर्तन हुआ था, या जिन से देशी नरेश अपने राज्य में फ़ौज रखने के उत्तरदायित्व से मुक्त हुए थे। पुनः केन्द्रीय

सरकार की कुछ आय ऐसी भी है, जो चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों में मालगुज़ारी, आबकारी, स्टाम्प, जंगल और रजिस्ट्री से होती है। उपर्युक्त 'अन्य करों' की मद के प्रान्तीय भाग में वह रक़म सम्मिलित है, जो प्रान्तीय सरकारें सिनेमा आदि खेल तमाशों से मनोरंजन-कर के रूप में लेती हैं।

तेरहवाँ अध्याय

शुल्क की आय

"सरकार के जिन कार्यों का सम्बन्ध सर्वसाधारण जनता से हो, उनका शुल्क लागत-खर्च और यथा-सम्भव घाटे के सिद्धान्त पर निर्धारित होना चाहिए; नफे के विचार से नहीं।"

पिछले तीन अध्यायों में करों से होने वाली सरकारी आय का विचार किया जा चुका। इस अध्याय में शुल्क से होने वाली आय के विषय में लिखा जायगा। शुल्क का आशय क्या है, और उस में तथा कर में क्या अन्तर है, यह नवें अध्याय में बतलाया जा चुका है। भारतवर्ष में सरकारी शुल्क की आय में निम्नलिखित मदों से होने वाली आय

सम्मिलित हैं :—(१) न्याय, (२) स्टाम्प, (३) रजिस्टरी, (४) पुलिस, (५) शिक्षा, (६) स्वास्थ्य और चिकित्सा, (७) निर्माण कार्य, (८) मुद्रा, टकसाल और विनिमय। इनमें से प्रथम छः विषय प्रान्तीय हैं, निर्माण कार्य अंशतः केन्द्रीय है, और अंशतः प्रान्तीय। मुद्रा, टकसाल और विनिमय की मद केन्द्रीय है। इन कार्यों का उद्देश्य आय-प्राप्ति नहीं होना चाहिए, इन से होने वाली आय इन के व्यय से यथा-सम्भव कम रहनी चाहिए। परन्तु भारतवर्ष में न्याय, स्टाम्प और रजिस्टरी से आय बहुत होती है; यह उचित नहीं है।

न्याय—इस विषय में निम्न प्रकार की आय होती है, अनधिकृत माल की बिक्री, कोर्ट-फ़ीस जिस में दीवानी अदालत के अमीन और कुड़क-अमीन आदि की फ़ीस शामिल है, हाई कोर्ट या उस के अधीन दीवानी अदालतों की फ़ीस, मजिस्ट्रेटों का किया हुआ जुर्माना, और ज़ब्ती आदि; वकालत की परीक्षा-फ़ीस, अन्य फ़ीस और जुर्माने आदि।

सरकारी हिसाब में प्रायः न्याय की आय, खर्च की अपेक्षा बहुत कम दिखायी जाती है। वास्तव में यह बहुत अधिक होती है। सरकारी हिसाब में कम दिखाने का कारण यह है कि स्टाम्प की बहुत सी आमदनी जो कि पृथक् दिखायी जाती है वास्तव में न्याय सम्बन्धी ही होती है, इस के विषय में आगे विचार किया जायगा। न्याय सस्ते से सस्ता होना चाहिए। गत वर्षों

में यहां मुकद्दमों का खर्च इतना अधिक रहा है कि साधारण स्थिति वाले लोगों के लिए न्याय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन, और अनेक दशाओं में असम्भव हुआ। इस खर्च के विचार से ही मुकद्दमा लड़ने वालों के सम्बन्ध में कहावत प्रचलित है कि 'जीता सो हारा, और हारा सो मरा'। अनेक दशाओं में मुकद्दमें में इतना खर्च हो जाता है कि यदि जीत हो जाय तो भी खर्चा बाद देकर कुछ लाभ नहीं रहता, फ़िर हारने की दशा में तो कहना ही क्या। आवश्यकता है कि न्याय-प्राप्ति में व्यय बहुत कम हो। हर्ष का विषय है कि अब प्रान्तीय सरकारें इस ओर ध्यान दे रही हैं। पंचायतों की अधिकाधिक स्थापना हो रही है, तथा इनके अधिकार भी बढ़ाये जा रहे हैं। इनके द्वारा मुकद्दमों का फ़ैसला होने में विशेष खर्च नहीं होता।

स्टाम्प—यह दो प्रकार का होता है, अदालती और गैर-अदालती। अदालती स्टाम्प की आय में कोर्ट फ़ीस या अदालतों में पेश होने वाले मुकद्दमों के काग़ज़ों और दरख्वास्तों पर लगाये जाने वाले टिकटों की आमदनी मामिल है। ग़ैर-अदालती स्टाम्प में व्यापार और उद्योग सम्बन्धी काग़ज़ों (हुंडी, पुर्जे, चेक, रुपयों की रसीद आदि) पर लगने वाले टिकटों की आमदनी गिनी जाती है।

अदालती स्टाम्प प्रत्यक्ष रूप से न्याय पर कर है। ग़ैर-अदालती स्टाम्प भी, परोक्ष रूप में, न्याय-कर ही है। रुपया लेने

की रसीद पर, या हुंडी आदि पर स्टाम्प इसलिए ही लगाया जाता है कि यदि पीछे कोई वाद-विवाद हो तो न्याय होने के अवसर पर प्रमाण तैयार रहे; इस प्रकार स्टाम्प की आय जितनी अधिक होगी, उतना ही यह समझा जायगा कि प्रजा को न्याय प्राप्त करने के लिए अधिक ख़र्च करना पड़ा। अतः यह आय अल्पतम होनी चाहिए, जिससे न्याय सस्ते से सस्ता हो।

रजिस्टरी--इस मद की आय निम्न विषयों में होती है:—दस्तावेज़ों की रजिस्टरी कराने की फ़ीस, रजिस्टरी की हुई दस्तावेज़ों की नक़ल की फ़ीस या जुर्माने आदि।

काग़ज़ों की रजिस्टरी होने से लोगों को बेईमानी करने का अवसर कम होता है। इस विभाग में एक परिमित सीमा तक की आमदनी बुरी नहीं।

पुलिस—इस मद में निम्न विषयों द्वारा आय होती है--सार्वजनिक विभागों, प्राइवेट कम्पनियों और लोगों को दी गयी पुलिस से आय, हथियार रखने के क़ानून से आय। मोटर आदि की रजिस्टरी करने आदि की फ़ीस, जुर्माने और ज़ब्ती।

शिक्षा—इस मद में निम्न विषयों से आय होती है--(१) विश्व विद्यालय—सरकारी आर्ट कालेज, और सरकारी औद्योगिक कालेजों की फ़ीस (२) माध्यमिक—सरकारी माध्यमिक स्कूलों की फ़ीस, तथा छात्रालयों से आय (३) प्रारम्भिक--सरकारी प्रारम्भिक स्कूल फ़ीस (४) स्पेशल फ़ीस, मिडिल स्कूल फ़ीस,

सुधारक स्कूलों के कारखानों की आय। (५) जनरल सहायता, या दान। (६) विविध; परीक्षा-फ़ीस सिविल ऐंजिनयरिंग कालेज, किताबों, और अन्य सामान की बिक्री, प्रान्तीय परीक्षाओं की फ़ीस आदि।

सर्व साधारणोपयोगी शिक्षा जितनी सुलभ और सस्ती हो, उतना ही अच्छा है। प्रारम्भिक शिक्षा तो निश्शुल्क (एवं अनिवार्य) ही होनी चाहिए। भारतवर्ष में अभी बहुत थोड़े स्थानों में ऐसा है। अब शिक्षा-प्रचार का यथा-सम्भव प्रयत्न हो रहा है। इसके सम्बन्ध में सातवें अध्याय में लिखा जा चुका है।

माध्यमिक और उच्च शिक्षा के लिए भारतवर्ष में अब प्रायः सर्वत्र न्यूनाधिक फ़ीस ली जाती है। यह फ़ीस कितनी ली जाय, इस विषय में भिन्न-भिन्न मत हैं। अनेक आदमी निर्धनता के कारण यह फ़ीस देने में असमर्थ हैं, इस लिए इच्छा होते हुए भी अपने बालकों को यह शिक्षा नहीं दिला सकते। वे चाहते हैं कि स्कूलों और कालिजों की फ़ीस यदि पूर्णतया न हटे तो उसमें काफ़ी कमी तो अवश्य हो जाय। अर्थात् इस शिक्षा का भी अधिकांश भार सरकार ही उठाये। दूसरे सज्जन, विशेषतया जब वे प्रान्तीय सरकारों की आर्थिक स्थिति तथा उन व्यय-साध्य कार्यों का विचार करते हैं जो इन सरकारों को करने चाहिएँ, यह मत देते हैं कि यह शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि खर्च यथा-सम्भव कम किया जाय; और जो खर्च हो वह विद्यार्थियों से वसूल हो। वर्तमान अवस्था में इसकी आशा कम ही है।

एक विचार यह भी है कि शिक्षा के साथ कुछ दस्तकारी की शिक्षा रहे (अथवा, शिक्षा का आधार कोई दस्तकारी हो); विद्यार्थी विविध

प्रकार की उपयोगी वस्तुएँ बना कर शिक्षा-संस्था के संचालन-व्यय में भाग लें। यह प्रयोग प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षा में किया जाने वाला है।

उच्च साहित्यिक शिक्षा स्वावलम्बी होने की समस्या हल होना सम्भव नहीं प्रतीत होता। परन्तु यह सर्व-विदित है कि वर्तमान दशा में अधिकांश युवक उच्च शिक्षा पाकर भी नौकरी के लिए मारे-मारे फिरते हैं, और आजीविका-प्राप्ति में असफल होने पर जीवन से निराश हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में सरकार द्वारा उच्च शिक्षा को सुगम करने के लिए उसके व्यय का अधिकांश भार अपने ऊपर लेना कैसे उचित कहा जा सकता है! सरकार का अपने ऊपर कोई व्यय-भार लेने का अर्थ है, सर्व साधारण जनता पर कर-भार बढ़ाना। हां, यदि दस्तकारियों, शिल्प, विज्ञान तथा विविध पेशों की शिक्षा के लिए सरकार को, फ़ीस की आय से कुछ अधिक ख़र्च करना पड़े तो कोई अनुचित बात नहीं, क्यों कि इस शिक्षा पाने वालों को अपनी आजीविका-प्राप्ति कठिन नहीं होती, और वे देश का धन बढ़ाने में सहायक होते हैं।

स्वास्थ्य और चिकित्सा—इस मद की आय निम्न विषयों से होती है—(आ) स्वास्थ्य—दवाइयों और टीका लगाने की चीज़ों की बिक्री, और सहायता। (अ) चिकित्सा—मेडिकल स्कूलों और कालिजों की फ़ीस; अस्पतालों की आय; पागलखानों की आय, जिसमें ऐसे पागलों को रखने से होनेवाली आय भी सम्मिलित है, जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो; म्युसिपैलिटियों और छावनियों की सहायता; रसायनिक विश्लेषण की फ़ीस, आदि।

निर्माण कार्य—इस मद में सरकारी मकानों का किराया उनकी बिक्री का रुपया, तथा इस प्रकार की अन्य विविध आय सम्मिलित है।

मुद्रा, टकसाल और विनिमय—इस मद में सरकार के 'पेपर करेंसी रिज़र्व' नामक कोष में जो 'सिक्यूरिटियाँ' रखी जाती हैं, उन की रक़म का सूद तथा भारतवर्ष के लिए पैसा इकन्नी आदि सिक्के ढालने का लाभ सम्मिलित है। रुपया ढालने का लाभ 'गोल्ड स्टेंडर्ड रिज़र्व' अर्थात् मुद्रा-ढलाई-लाभ-कोष में डाला जाता है। विनिमय की आय के सम्बन्ध में, इस मद में होने वाले व्यय के प्रसंग में लिखा जा चुका है।

चौदहवाँ अध्याय

रेल, डाक, आबपाशी आदि

"उधार ली हुई पूँजी से रेलवे के तथा दूसरे ऐसे कार्य किये गये, जिन की योजनाएँ युद्ध-कार्यालयों में बनी थीं, रेलवे के दफ़्तरों में नहीं।"

—जे० आर० मेग्डोनल्ड

अब हम सरकार के व्यवसायिक कार्यों का विचार करते हैं। ये कार्य मुख्यतया निम्नलिखित हैं:—रेल, डाक-तार, जङ्गल

और नहर। इन कार्यों में से रेल और डाक, तार की आय केन्द्रीय है, और शेष की प्रान्तीय। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन कार्यों से जो कुल आय होती है, उस में से इन के प्रबन्ध और संचालन का व्यय निकाल कर, हिसाब में विशुद्ध आय ही दिखायी जाती है।

रेल—भारतवर्ष में रेलों का कार्य सन् १८४९ ई० से आरम्भ हुआ। इन का संक्षिप्त इतिहास और लाभ हानि, गुण-दोष आदि हमारे 'भारतीय अर्थ शास्त्र' में दिये हुए हैं। सरकार ने बहुत समय तक इन का प्रबन्ध और संचालन विविध कम्पनियों से कराया, जिन्हों ने बहुत-सा अंधाधुन्ध ख़र्च किया। कालान्तर में बहुत-सी लाइनें सरकार ने खरीद लीं, पर वह भी भारतीय जनता के प्रतिनिधियों के प्रति उत्तरदायी न थी, उस के ख़र्च पर भारतीयों का नियंत्रण न था। फल-स्वरूप रेलों के काम से सरकार के दूसरे कामों को आर्थिक सहायता मिलना तो दूर, घाटा ख़ूब रहा। १८९८ ई० तक घाटे की रक़म ९८ करोड़ हो गयी। सर्व-प्रथम १९०६ ई० में कुछ लाभ हुआ। सन् १९२६ ई० से रेलों का आय-व्यय भारत-सरकार के हिसाब से पृथक् रखा जाने लगा है।

रेल की मद में निम्न लिखित व्यय होता है—(क) सरकारी रेलों का ख़र्च, ऋण पर सूद, कम्पनियों की लगायी पूँजी पर सूद,

रेलों के खरीदने के लिए वार्षिक वृत्ति, क्षति-पूर्त्ति निधि। (ख) सहायता-दत्त कम्पनियों सम्बन्धी खर्च।

रेलों का उद्देश्य—भारतवर्ष में रेलों में लगभग नौ सौ करोड़ रुपये लगे हुए हैं। यह धन-राशी सिंचाई और सड़कों आदि के कहीं अधिक उपयोगी कार्यों में भयङ्कर कंजूसी कर के लगायी गयी है। सरकार के ऐसा करने का, रेलों के प्रति पक्षपात का, क्या कारण था ? बात यह है कि रेलों के निर्माण का मूल उद्देश्य यहाँ सर्व साधारण की सुविधा नहीं था। यहां रेलें प्रधानतया सैनिक आवश्यकताओं की दृष्टि से बनायी गयी हैं; यथा, ज़रूरत पड़ने पर सेना और सैनिक सामग्री एक स्थान से दूसरे स्थान में ले जायी जा सके, और भारतवर्ष के किसी भाग में कोई विद्रोह सफल न हो, तथा यह ब्रिटिश-साम्राज्य से बाहर न जा सके। इसी लिए भारतीय नेताओं की आवाज़ अनसुनी करके, तथा अन्य जन-हितकारी कार्यों की अवहेलना करके, जैसे भी बना, भारतवर्ष में रेलों का जाल बिछाने का खूब प्रयत्न किया गया।

रेलों के बनाने में यह लक्ष्य तो रहा ही है कि इङ्गलैंड का लाभ हो। रेलों के लिए इङ्गलैंड के फ़ौलाद के कारखानों से सामान मँगाया गया, इस के अतिरिक्त, रेलों ने उन कारखानों के लिए भारत का कच्चा माल भेजने, और उन का तैयार माल यहाँ लाने में खूब भाग लिया है।

रेलवे नीति के दोष—हम यह स्वीकार करते हैं कि शीघ्र माल ढोने तथा यात्रा करने के उन्नत साधनों के रूप में रेलों की बड़ी उपयोगिता है। परन्तु जब कि रेलों को आधुनिक सभ्यता का एक आवश्यक अंग बता कर इन की अत्यधिक प्रशंसा की जाती है, यहां तक कि इन्हें अंग्रेज़ी राज्य की एक नियामत बता कर सर्वसाधारण को भ्रम में डाला जाता है, तो यह आवश्यक है कि वस्तु-स्थिति को अच्छी तरह ध्यान में रखा जाय। प्रत्येक बात की एक मर्यादा होती है, और अच्छी से अच्छी वस्तु भी एक सीमा तक ही उपयोगी हो सकती है। जब कि रेलों का, यहाँ के रोज़गार की आवश्यकता से अधिक निर्माण किया गया है, रेल में इतना अधिक व्यय किया गया है कि सिंचाई तथा भीतरी दुलाई के लिए उपयोगी नहरों के महत्व-पूर्ण कार्यों के लिए सरकार को धनाभाव होता रहा है, जब कि रेलों के खर्च के कारण भारतीय कर-दाता ऐसे बोझ से दब गया है कि उस के लिए भोजन वस्त्र तथा शिक्षा आदि की भी यथेष्ट व्यवस्था नहीं रही है, तो कोई विचार वान व्यक्ति किस प्रकार यहाँ की रेलवे-नीति की प्रशंसा करने का साहस कर सकता है! फिर यह तो पहले ही बताया जा चुका है कि रेलों में खर्च बहुत अंधाधुन्ध हुआ, इन्हों ने इङ्गलैंड के हित को सन्मुख रख कर भारतीय उद्योग धन्धों को भयङ्कर क्षति पहुँचायी, और अब भी इन की माल ढोने की दर ऐसी हैं कि ये भारतवर्ष को कच्चे माल की निर्यात करने वाला, और तैयार माल के वास्ते इङ्गलैंड आदि पर निर्भर

रहते हुए असंख्य रुपया या जीवनोपयोगी द्रव्य बाहर भेजने वाला बनाने में सहायक होती हैं।

रेलों में और भी कई दोष हैं। उन में अधिकांश विदेशी पूँजी और विदेशी प्रबन्ध है, जिसमें भारतवर्ष को सूद की बड़ी रक़म बाहर भेजनी होती है, और जनता के हितों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया जाता। तीसरे दर्जे के यात्रियों को, जिनकी संख्या अन्य सब दर्जों के यात्रियों से अधिक होती है, बहुत शिकायतें रहती हैं। यदि माल ले जाने की दरों में आवश्यक परिवर्तन किया जाय और जनता की सुविधाओं का यथेष्ट विचार रखा जाय, तो रेलों के द्वारा होने वाले व्यापार और यात्रा की वृद्धि हो और फलतः उनकी आय भी बढ़े।

रेलों का हिसाब—इस मद की आय के हिसाब के वास्ते सरकारी रेलों की कुल आय में से उनके चलाने का ख़र्च तथा कम्पनियों को दिया हुआ मुनाफ़ा घटा दिया जाता है, और शेष में कम्पनियों की रेलों से होने वाली आय जोड़ दी जाती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है सन् १९२५ ई० से रेलों का हिसाब अन्य सरकारी हिसाब से पृथक् कर दिया गयाहै। इस समय यह व्यवस्था है :—रेलों में लगी हुई पूँजी का एक प्रतिशत सरकारी आय में सम्मिलित किया जाता है, इसके अतिरिक्त जिस वर्ष निर्धारित से अधिक मुनाफ़ा होता है, उस वर्ष के अधिक मुनाफ़े का पँचमांश भी सरकार को मिलता है।

अगर सैनिक महत्व वाली रेलों से नुक़सान हो तो उतनी रक़म सरकार को दी जाने वाली रक़म से काट ली जाती है। अगर सरकार को दी जाने वाली रक़म चुकाने के बाद रेलवे रिज़र्व फंड के लिए तीन करोड़ से अधिक रुपया रह जाय, तो जितना रुपया अधिक हो, उसका तृतीयांश सरकार को दिया जाता है।

डाक और तार—इस मद्द की आय में वह रक़म दिखायी जाती है जो कुल आय में से संचालन-व्यय निकाल कर शेष रहती है। कुल आय में (क) भारतवर्ष में होने वाली डाक और तार की आय, मनीआर्डर-क़मीशन और इंडो-योरपियन तारों की आय तथा (ख) इंगलैंड में होने वाली इंडो-योरोपियन तारों की आय सम्मिलित होती है। व्यय में (१) भारतवर्ष के कार्यालयों का व्यय, स्टेशनरी, और छपाई, डाक लाने और ले जाने का ख़र्च, तार की लाइन आदि का ख़र्च, (२) इंगलैंड में ईस्टर्न मेल के लिए दी जानी वाली रक़म तथा (३) भारतवर्ष और इंगलैंड में होने वाले इंडो-योरपियन तारों का ख़र्च सम्मिलित है।

भारतवर्ष में सरकार ने जनता की सामर्थ्य और सुविधा का विचार न करते हुए पोस्टकार्डों और लिफ़ाफों का मूल्य बढ़ा रखा है, इससे लोगों के पारस्परिक व्यवहार-वृद्धि में बड़ी रुकावट है। पार्सलों के महसूल की दर बढ़ने से अब जन साधारण को वी.पी. से पुस्तकें मंगाने का ख़र्च बहुत कष्टप्रद हो गया है। इससे

साहित्य और शिक्षा के प्रचार को बहुत धक्का पहुँच रहा है। गाँवों में डाकखाने बहुत कम हैं; इन्हें बढ़ाने की आवश्यकता है।

सरकार ने डाक और तार दोनों विभागों को मिला रखा है। इस लिए डाक का महसूल पहले से बढ़ाया जा चुकने पर भी इस संयुक्त मद्द में घाटा रहता है। यदि दोनों विभाग अलग-अलग हों तो डाक में बचत हो सकती है; हाँ, तार का कार्य घाटे पर चल रहा है। इस में विशेष किफ़ायत की आवश्यकता है।

जंगल—इस मद्द में निम्नलिखित आय होती है:—लकड़ी या अन्य पैदावार (बांस, घास, ईंधन, कोयला राल आदि) जो सरकार ले, लकड़ी या अन्य पैदावार जो जनता के आदमी लें, जंगल का लावारसी और ज़ब्त किया हुआ माल, विदेशी लकड़ी या अन्य जंगल की पैदावार पर महसूल, इस विभाग सम्बन्धी जुर्माना, ज़ब्ती आदि।

जंगल विभाग को आय का लक्ष्य रख कर प्रजा-हित की उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं। अनेक स्थानों में जंगल विभाग के कारण चरागाहों की बड़ी कमी हो गई है। इससे सर्व साधारण को पशु-पालन में बड़ी कठिनाई है। पुनः ईंधन मँहगा होने के कारण उसका कुछ काम गोबर के उपलों से ही ले लिया जाता है। इससे खाद की कमी होती है। इस समय जंगल विभाग इन बातों की ओर ध्यान दे रहे हैं।

आबपाशी——इस मद की आय, कुल आय में से संचालन-व्यय निकाल कर दिखायी जाती है। कुल आय में कुछ आय तो प्रत्यक्ष होती है, और कुछ वह होती है जो आबपाशी के कारण मालगुज़ारी के बढ़ने से होती है। भारतवर्ष में नहरों और बड़े तालाबों का कार्य बहुत बढ़ने की आवश्यकता है। कार्य बढ़ने के साथ आय का बढ़ना अनुचित नहीं, परन्तु इसकी व्यवस्था इस प्रकार होनी चाहिए कि जनता की सुविधा का सम्यक् ध्यान रखा जाय, और दर नियमित रहे।

पहले कहा जा चुका है कि जहाँ सरकार ने रेलों में अपार द्रव्य खर्च किया है; इस मद में अपेक्षाकृत बहुत कम काम हुआ है। इधर कुछ वर्षों से इस ओर कुछ अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। पर अभी बहुत काम होने की आवश्यकता है। प्रान्तीय सरकारों को इस विषय में खर्च करने की स्वतंत्रता है, पर उन की शक्ति परिमित है।

गत वर्षों में कृषकों को नहर विभाग के सम्बन्ध में कई शिकायतें रही हैं, यथा आबपाशी की दर बहुत अधिक होना, तथा सिंचाई के लिए पानी समय पर न मिलना। अब प्रान्तीय सरकारें, विशेषतया कांग्रेसी सरकारें कृषकों के हित की ओर यथेष्ट ध्यान दे रही हैं और, उपर्युक्त शिकायतों का अवसर न आने देने का प्रयत्न कर रही हैं।

स्टेशनरी और छापाखाना——यह मद केन्द्रीय भी है,

और प्रान्तीय भी। भारत-सरकार की अपनी स्टेशनरी और छापेखाने की व्यवस्था है, तथा प्रान्तीय सरकारों की अपनी-अपनी अलग व्यवस्था है। इस मद में सरकारी गज़ट, रिपोर्टों, पुस्तकों तथा पत्रक आदि की बिक्री से होने वाली, तथा प्रेस की अन्य आय सम्मिलित है।

विशेष वक्तव्य--सरकार की व्यवसायिक आय का विचार हो चुका। सरकार को कुछ आय पूर्वोक्त के अतिरिक्त अन्य साधनों से भी होती है। इनमें मुख्य सेना, सूद आदि हैं। सैनिक आय में सैनिक स्टोर, कपड़े, दूध, मक्खन, तथा पशुओं की बिक्री से, और सैनिक निर्माण कार्य से होने वाली आय सम्मिलित है।

सूद की मद के केन्द्रीय भाग में (क) भारत-सरकार द्वारा प्रान्तों को दिये हुये ऋण और पेशगी का सूद, रेलवे कम्पनियों को दी हुई पेशगी का सूद, तथा उनके 'प्राविडेंट फंड' की सिक्यूरिटी का सूद, और (ख) इंगलैंड में सूद की विविध आय सम्मिलित होती है। इस मद की प्रन्तीय आय ज़िला और अन्य 'लोकल फंड' कमेटियों, म्युनिसिपैलटियों, ज़िला-बोर्डों, ज़मींदारों, किसानों तथा सहकारी समितियों आदि को दिये हुए ऋण के सूद से होती है।

प्रान्तों को पुराने स्टोर और सामान की, तथा ज़मीन और मकान ('नज़ूल') की बिक्री से, सरकारी लेखा-परीक्षक आदि

की फ़ीस से, और ज़मीन और मकानों के किराये आदि से भी आय होती है।

जेलों की आय का भी यहाँ उल्लेख कर देना आवश्यक है। यह आय प्रान्तीय है, और विशेषतया उस सामान की बिक्री से होती है, जो जेलों के कारखानों में क़ैदियों द्वारा तैयार कराया जाता है। गत वर्षों में क़ैदियों से काम ऐसा लिया गया जो उनकी रुचि या योग्यता के अनुसार न था, और जिसमें न उनकी शक्ति का समुचित उपयोग ही होता था, और न उन्हें कुछ उत्साह ही होता था। इसलिए जेलों में जो माल तैयार होता था, वह घटिया होता था, या उसमें लागत-खर्च अधिक पड़ता था। अब पूर्वोक्त बातों में सुधार हो रहा है, जेलों में तैयार होने वाले माल की बिक्री का भी अच्छा प्रबन्ध किया जायगा; इस प्रकार माल के दाम भविष्य में अच्छे उठने की आशा है।

पन्द्रहवाँ अध्याय

स्थानीय राजस्व

"स्वाधीन राष्ट्रों की शक्ति नागरिकों की स्थानीय समितियों में होती है।"

—डी० टोकविल

पिछले अध्यायों में केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों के आय-व्यय के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है। अब हम स्थानीय राजस्व अर्थात् म्युनिसिपैलिटियों, ज़िला-बोर्डों आदि स्थानीय संस्थाओं के आय-व्यय का विचार करेंगे। ये संस्थाएँ प्रान्तीय सरकारों की अधीनता और नियंत्रण में कार्य करती हैं। यद्यपि एक परिमित सीमा तक इन की अपनी आय है, और उसे ये कुछ बढ़ा भी सकती हैं, तथापि अभी तक ये बहुत-कुछ सरकार के ही आश्रित हैं। जब कभी इन्हें सरकार से यथेष्ट सहायता या ऋण नहीं मिलता तो इन्हें बहुत कठिनाई होती है।

स्थानीय करों का विचार—कर सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातें पहले (नवें अध्याय में) बतायी जा चुकी है। यहाँ स्थानीय

करों के विषय में विचार करते हैं। ये कर विशेषतया निम्न लिखित हैं :—

१—व्यापार पर कर
२—मकान-कर
३—यात्री-कर
४—हैसियत-कर

व्यापार पर कर—भारतवर्ष में कई प्रान्तों में स्थानीय संस्थाओं की अधिकतर आय उस महसूल से होती है जो इस देश के ही दूसरे स्थानों से इन संस्थाओं की सीमा के अन्दर आने वाले माल पर लगता है। इसे चुंगी कहते हैं। इस कर का भार उन आदमियों पर पड़ता है जो इस माल का उपयोग करते हैं।

इस कर से होने वाली आय अनिश्चित रहती है। कर-दाता को बड़ी असुविधा रहती है, उसे जब अपने परिवार के आदमियों के साथ नगर में प्रवेश करते समय चुंगी की चौकी पर ठहरना पड़ता है तो बुरा लगता है। यह कर जब जीवन-रक्षक पदार्थों पर लगता है तो इस का भार धनिकों की अपेक्षा ग़रीबों पर अधिक पड़ता है। इस के वसूल करने का खर्च अपेक्षाकृत अधिक होता है, और इस में धोखा देकर कर से बचने की भी बहुत गुंजाइश है। इस कर के कारण आदमियों तथा गाड़ियों आदि की आवाजाई में बाधा उपस्थित होती है। इस लिए अनेक आदमियों का मत है कि यह कर उठा दिया जाना चाहिए।

मकान-कर—यह कर मकान के वार्षिक किराये पर निर्धारित दर से लगाया जाता है। बहुत-सी म्युनिसिपैलिटियों में इस कर के लगाये जाने की गुंजाइश है, यदि मकानों के मौक़े ('साइट') का भी विचार रखा जाय तो आय और बढ़ सकती है। गृह-कर बहुधा मकान के मालिक पर न पड़ कर उस के किरायेदार पर पड़ता है, क्योंकि मालिक किराये के साथ ही प्रत्यक्ष अथवा गौण रूप से इसे वसूल कर लेता है। देहातों में इस कर के समान 'अबवाब' लिया जाता है, यह प्रायः मालगुज़ारी के साथ उस पर एक आना फ़ी रुपये के हिसाब से लिया जाता है। इसे सरकार वसूल करती है, और पीछे ज़िला-बोर्डों को दे देती है।

यात्री-कर—कुछ तीर्थ-स्थानों आदि में यात्री-कर लिया जाता है। इसका भार वहाँ आने वालों पर पड़ता है, जो, यह समझा जाता है कि उन स्थानों से लाभ उठाते हैं। यह कर प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ सुभीते से वसूल कर लिया जाता है।

हैसियत-कर—यह आय-कर की भाँति प्रत्यक्ष कर है, इसका परिमाण बहुत कम रखा जाता है। इसे प्रायः ज़िला-बोर्ड लेते हैं। कुछ स्थानों में नौकर रखने वालों से भी कर लिया जाता है।

फ़ीस आदि—कुछ विशेष कार्यों के उपलक्ष्य में स्थानीय संस्थाएँ नागरिकों से फ़ीस या शुल्क लेती हैं, जैसे पानी (नल) का शुल्क, रोशनी का शुल्क (बिजली आदि), स्कूल फ़ीस आदि। कुछ शुल्क विलासिता की वस्तुओं पर, अथवा सुव्यवस्था

की दृष्टि से लिये जाते हैं, यथा मोटर, साइकिल, तांगा, कुत्ता आदि रखने का शुल्क।

भारतवर्ष की स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ—प्राचीन समय में यहाँ चिरकाल तक स्थानीय कार्य, देहातों में ग्राम्य-संस्थाओं द्वारा, और नगरों में व्यापार-संघों ('ट्रेड गिल्ड') द्वारा होता रहा। यहां की ग्राम्य पंचायतें बहुत प्रसिद्ध रही हैं। प्रत्येक गाँव की पंचायत रक्षार्थ पुलिस रखती थी, छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा करती थी, भूमि-कर वसूल कर के राज्य-कोष में भेजती थी, और तालाब, पाठशाला, मन्दिर, पुल, सड़क आदि स्थानीय उपयोगिता के सार्वजनिक कार्यों का प्रबन्ध करती थी। अंगरेज़ों के शासन में पंचायतें लुप्त-प्राय: हो गयीं। कुछ समय से उन की पुन: कुछ नये रूप में स्थापना की जाने लगी है। अब तो प्रान्तीय सरकारें इन की खूब वृद्धि और विस्तार कर रही हैं। अस्तु, भारत-वर्ष की वर्तमान स्थानीय संस्थाओं के निम्नलिखित भेद हैं :—

१—पंचायतें—

२—स्थानीय बोर्ड, ज़िला-बोर्ड, यूनियन कमेटियाँ।

३—म्युनिसिपैलिटियाँ, कारपोरेशन, तथा नोटीफाइड एरिया।

४—पोर्ट ट्रस्ट।

५—इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट।

पंचायतें—इनमें चार-पाँच या अधिक सदस्य तथा एक सरपंच होता है। इन्हें छोटे-मोटे दीवानी तथा फ़ौजदारी मामलों

का फ़ैसला करने का अधिकार होता है। इनमें पेश होने वाले मुक़द्दमों में, किसी पक्ष की ओर से कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता, अन्य ख़र्च भी कम होता है। पंचायतों को गाँवों में शिक्षा, सफ़ाई, और आवारा फिर कर नुक़सान पहुँचाने वाले मवेशियों के सम्बन्ध में कुछ अधिकार होता है। पंचायतें साधारण अपराध करने वालों पर कुछ जुर्माना कर सकती हैं; मुक़दमा लड़ने वालों (वादी प्रतिवादी) से कुछ फ़ीस ले सकती हैं। इन्हें ज़िला-बोर्ड या सरकार से कुछ रक़म मिलती है। इसके अतिरिक्त, ये निर्धारित नियमों के अनुसार, अपने क्षेत्र के आदमियों पर कुछ कर लगा सकती हैं, तथा अपराधियों पर कुछ जुर्माना भी कर सकती हैं, (इन्हें क़ैद करने का अधिकार नहीं होता)। यदि इनका कोई कर या जुर्माना वसूल न हो तो ज़िला-मजिस्ट्रेट उसे वसूल करा देता है। पंचायतों को अपनी आय कलेक्टर की अनुमति से ही, शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई, या कच्ची सड़कों आदि के कार्य में ख़र्च करनी होती है।

सरपंच पंचायत का सभापति होने के अतिरिक्त, ग्राम-कोष और उसका हिसाब तथा अन्य आवश्यक काग़ज़ और रजिस्टर रखता है, सम्मन की तामील करवाता है, और समय-समय पर कलेक्टर को पंचायत सम्बन्धी रिपोर्ट देता रहता है।

बोर्ड—देहातों में प्रारम्भिक शिक्षा और स्वास्थ्य आदि का कार्य करने वाली मुख्य संस्थाएँ बोर्ड कहलाती हैं। इनके तीन भेद

हैं; किसी-किसी प्रान्त में तो इनमें से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं और कहीं-कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं :—

१—लोकल बोर्ड, यह एक गाँव में या कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिविज़नल बोर्ड; यह एक ताल्लुक़े या सब-डिविज़न में होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देख-भाल करता है।

३—ज़िला-बोर्ड; यह एक ज़िले में होता है, और ज़िले भर के लोकल बोर्डों (या ताल्लुका-बोर्डों) का निरीक्षण करता है।

यद्यपि अधिकतर बोर्डों में चुने हुए सदस्य ही अधिक होते हैं, तथापि कहीं-कहीं नामज़द सदस्य भी काफ़ी होते हैं। किस ज़िला-बोर्ड में कितने सदस्य हों, उसका सभापति चुना हुआ रहे, या नियुक्त किया जाय, यह प्रत्येक प्रान्त के ज़िला-बोर्ड-क़ानून से निश्चित किया हुआ है। संयुक्त प्रान्त में सभापति चुना हुआ एवं ग़ैर-सरकारी होता है।

बोर्डों के कार्य—बोर्डों का कर्त्तव्य अपने ग्राम्य क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य और सफ़ाई आदि के अतिरिक्त कृषि और पशुओं की उन्नति करना है। इस प्रकार इनके मुख्य कार्य ये हैं :—

१—सड़कें बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना। उन पर पेड़ लगवाना तथा उन पेड़ों की रक्षा करना। २—प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना (देहातों में प्राइमरी या मिडिल स्कूल

ज़िला-बोर्डों के ही होते हैं) ३--चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक या प्लेग आदि का टीका लगवाना, पशुओं के इलाज के लिए पशु-चिकित्सालय की व्यवस्था करना। ४—बाज़ार, मेला, नुमाइश या कृषि-प्रदर्शिनी आदि का प्रबन्ध करना। ५—पीने के पानी के प्रबन्ध के लिए तालाब या कुए खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। ६—काँजी हौज़ अर्थात् ऐसे स्थान की व्यवस्था करना, जहाँ खेती आदि की हानि करने वाले जानवर रोक कर रखे जाते हैं। [जिस आदमी का ये पशु नुक़सान करते हों, वह इन्हें इस स्थान में भेज देता है; जब इनका मालिक इन्हें लेने के लिए आता है, तो उसे निर्द्धारित जुर्माना देना पड़ता है]। ७—घाट, नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना।

बोर्डों की आय—बोर्डों के कार्य हम बता चुके। ब्रिटिश भारत में दो सौ से अधिक जिला-बोर्ड, और लगभग छः सौ अधीन-ज़िला-बोर्ड हैं। मदरास में ४५५ यूनियन पंचायत हैं। जिला-बोर्डों के क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या है, बाईस करोड़ से भी अधिक। उपर्युक्त कार्यों तथा इस जन-संख्या को देखते हुए बोर्डों की कुल वार्षिक आय, जो लगभग सतरह करोड़ रुपये है, बहुत कम है। आय अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया जाता है, और जो सरकारी वार्षिक लगान या माल-गुज़ारी के साथ ही प्रायः एक आना या अधिक फ़ी रुपये के हिसाब से वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिए सरकार उन्हें कुछ रक़म, कुछ

शर्तों से प्रदान कर देती है। आय के अन्य साधन तालाब, घाट, सड़क पर के महसूल, पशु-चिकित्सा और स्कूलों की फ़ीस, काँजी हौज़ की आमदनी, मेले नुमाइशों पर कर, तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि-कर हैं। प्रायः लोकल बोर्डों या ताल्लुका-बोर्डों की कोई स्वतंत्र आय नहीं होती, उन्हें समय-समय पर ज़िला-बोर्डों से ही कुछ रुपया मिल जाता है, वे उस रुपये को ज़िला-बोर्ड की इच्छा या सम्मति के विरुद्ध ख़र्च नहीं कर सकते।

म्युनिसिपैलिटियां और कारपोरेशन—सन् १८४२ ई० में बंगाल में, और सन् १८५० ई० में समस्त भारतवर्ष में म्युनिसिपैलिटियाँ स्थापित करने के विचार से क़ानून बनाया गया। इनकी कुछ वास्तविक उन्नति सन् १८७० ई० में, लार्ड मेयो के समय में हुई। सन् १८८४ ई० में लार्ड रिपन ने इनके अधिकार बढ़ाये, तब से इनका विशेष प्रचार हुआ है।

प्रत्येक म्युनिसिपैलिटी की सीमा निश्चित की हुई है। जो लोग उसके अन्दर रहते और उसे टैक्स देते हैं, वे 'रेट पेयर' या कर-दाता कहाते हैं। इन कर-दाताओं में से जो निर्धारित वार्षिक कर देते हैं, अथवा जिनके पास जागीर हैं, वे "वोटर" या मत-दाता कहाते हैं। इन्हें अपनी-अपनी म्युनिसिपैलटी के लिए मेम्बर (म्युनिसिपिल कमिश्नर) चुनने का अधिकार होत है।

कलकत्ता, बम्बई और मदरास शहर की म्युनिसिपैलिटियाँ, म्युनिसिपल कारपोरेशन या केवल "कारपोरेशन" कहलाती हैं।

इनके मेम्बरों (कमिश्नरों) को कौंसिलर कहते हैं। अन्य म्युनिसिपैलिटियों से, इनका संगठन कुछ भिन्न प्रकार का, और आय-व्यय तथा कार्य-क्षेत्र अधिक होता है।

इनके कार्य--म्युनिसिपैलिटियों और कारपोरेशनों के मुख्य कार्य, कहीं-कहीं कुछ भेद होते हुए, साधारणतया ये हैं :—

(१) सर्व साधारण की सुविधा की व्यवस्था करना; सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत कराना, उन पर छिड़काव कराना, और वृक्ष लगवाना, डाक-बंगला या सराय आदि सार्वजनिक मकान बनवाना, कहीं आग लग जाय तो उसे बुझाना, अकाल, जल की बाढ़, या अन्य विपत्ति के समय जनता की सहायता करना।

(२) स्वास्थ्य-रक्षा; अस्पताल या औषधालय खोलना, चेचक और प्लेग के टीके लगाने तथा मैले पानी बहाने का प्रबन्ध कराना, और छूत की बीमारियों को रोकने के लिए उचित उपाय काम में लाना; पीने के लिए स्वच्छ जल (नल आदि) की व्यवस्था करना, खाने के पदार्थों में कोई हानिकारक वस्तु तो नहीं मिलाई गयी है, इसका निरीक्षण करना।

(३) शिक्षा; विशेषतया प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए पाठशालाओं की समुचित व्यवस्था करना; मेले और नुमाइशें कराना।

(४) बिजली की रोशनी, ट्रामवे तथा छोटी रेलों के बनाने में सहायता देना।

आमदनी के साधन—इन संस्थाओं की आमदनी के मुख्य-मुख्य साधन ये हैं :—

(१) चुंगी। अधिकतर उत्तर भारत, बम्बई और मध्य प्रान्त में; यह इन संस्थाओं की सीमा के अन्दर आने वाले माल तथा जानवरों पर लगती है। संयुक्त प्रान्त में इस कर की इतनी प्रधानता है कि कुछ जिलों में म्युनिसिपैलिटियों का नाम ही 'चुंगी' पड़ गया है। (२) मकान और ज़मीन पर कर (विशेषतया आसाम, बिहार-उड़ीसा, बम्बई, मध्य प्रान्त और बंगाल में)। (३) व्यापार और पेशों पर कर, (विशेषतया मदरास, संयुक्त प्रान्त, बम्बई, मध्य प्रान्त और बंगाल में)। (४) सड़कों और नदियों के पुलों पर कर (विशेषतया मदरास, बम्बई और आसाम में)। (५) सवारियों, गाड़ी बग्गी, साइकिल, मोटर और नाव का शुल्क। (६) पानी, रोशनी, नालियों की सफ़ाई, हाट-बाज़ार, क़साईख़ाने, पायख़ाने आदि का शुल्क। (७) हैसियत, जायदाद और जानवरों पर कर। (८) यात्रियों पर कर, यह कर एक निर्धारित दूरी से अधिक के फ़ासले से आने वालों पर लगता है और प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ ही वसूल कर लिया जाता है। (९) म्युनिसिपल स्कूलों की फ़ीस। (१०) कांजी-हौस की फ़ीस। (११) सरकारी सहायता या ऋण।

कुछ प्रान्तों में शिक्षा, अस्पतालों और पशु-चिकित्सा के लिए

म्युनिसिपैलिटियों को सरकारी सहायता मिलती है। जब किसी म्युनिसिपैलिटी को मैले पानी के बहाव के लिए नालियां बनानी होती हैं अथवा, जल-प्रबन्ध के लिए शहर में नल आदि लगाने होते हैं तो वह ऋण लेती है। यदि उचित समझा जाय, तो इस खर्च का कुछ भार सरकार कुछ शर्त्तों से अपने ऊपर ले लेती है।

संख्या और आय-व्यय—ब्रिटिश भारत में (जिसमें अब बर्मा नहीं है) सब म्युनिसिपैलिटियों और कारपोरेशनों की संख्या ७२७ है। इन संस्थाओं की कुल आय १४ करोड़ रुपया है। इसमें ३ करोड़ रुपये से अधिक कलकत्ता, मदरास और बम्बई का ही भाग है; इस प्रकार ७२४ म्युनिसिपैलिटियों की आय ११करोड़ रुपये रह गई; और यह कितनी कम है, यह लिखने की आवश्यकता नहीं। कई प्रान्तों में म्युनिसिपैलिटियां अपना बजट या नया कर सरकार (या कमिश्नरों) से मंजूर कराती हैं।

कुल म्युनिसिपैलिटियों और कारपोरेशनों की सीमा में २ करोड़ १२ लाख से अधिक, अर्थात् ब्रिटिश भारत की कुल जन संख्या के लगभग ८ फ़ी सदी से कुछ कम आदमी रहते हैं। ६५३ म्युनिसिपैलिटियों में पचास-पचास हज़ार से कम, और शेष ७४ में पचास-पचास हज़ार या अधिक आदमी हैं। म्युनिसिपैलिटियों की सीमा में, प्रत्येक आदमी पर म्युनिसिपल कर की औसत भिन्न-भिन्न है।

नोटीफ़ाइड एरिया—ये अधिकतर पंजाब और संयुक्त-प्रान्त में हैं। इन्हें म्युनिसिपैलिटियों के थोड़े-थोड़े से अधिकार होते हैं। ये उसी क्षेत्र में होते हैं, जहाँ बाज़ार या क़स्बा अवश्य हो, और जिसकी जन-संख्या दस हज़ार से अधिक न हो। म्युनिसिपैलिटियों की अपेक्षा इनकी आय (एवं व्यय) कम रहती है। इनके अधिकांश सदस्य नामज़द होते हैं।❀

पोर्ट-ट्रस्ट—बन्दरगाहों का स्थानीय प्रबन्ध करने वाली संस्थाएँ 'पोर्ट-ट्रस्ट' कहलाती हैं। ये घाटों पर मालगोदाम बनवाती हैं, और व्यापार के सुभीते के लिए नाव, और छोटे जहाज़ की सुव्यवस्था करती हैं। समुद्र-तट, नगर के निकटवर्ती समुद्र-भाग, या नदी पर इनका पूरा अधिकार रहता है। इनकी पुलिस अलग रहती है। इनके सभासद कमिश्नर या ट्रस्टी कहाते हैं। सभासदों में चेम्बर-आफ़-कामर्स जैसी व्यापार-संस्थाओं के प्रतिनिधि होते हैं। कलकत्ते और करांची में म्युनिसिपैलिटियों के भी प्रतिनिधि इनमें लिए जाते हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त सब पोर्ट-ट्रस्टों में निर्वाचित सदस्यों की अपेक्षा नामज़द ही अधिक रहते हैं। अधिकांश सदस्य योरपियन होते हैं। म्युनिसिपैलिटियों की अपेक्षा पोर्ट-ट्रस्टों में सरकारी हस्तक्षेप अधिक है। माल-लदाई और उतराई, गोदाम के किराये, तथा जहाज़ों के कर से

❀ अब इन्हें तोड़ कर इनकी जगह यथा-सम्भव म्युनिसिपैलिटियाँ स्थापित करने का विचार हो रहा है।

जो आमदनी होती है, वही इनकी आय है। इन्हें आवश्यक कार्यों के लिए क़र्ज़ लेने का अधिकार है। प्रधान पोर्ट-ट्रस्ट कलकत्ता, बम्बई, करांची, मदरास और चटगाँव में हैं। इनकी कुल आय साढ़े सात करोड़ रुपये है। पोर्ट-ट्रस्टों पर लगभग ५५ करोड़ रुपये से अधिक ऋण चढ़ा हुआ है।

इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट—बड़े-बड़े शहरों की उन्नति या सुधार के लिए कभी-कभी विशेष कार्य करने होते हैं, जैसे सड़कों को चौड़ी करना, घनी बस्तियों को हवादार बनाना, ग़रीबों और मजदूरों के लिए मकानों की सुव्यवस्था करना आदि। इन कामों को म्युनिसिपैलिटियां नहीं कर सकतीं; उन्हें तो अपना रोज़मर्रा का काम ही बहुत है। अतः इनके वास्ते इम्प्रूवमैंट ट्रस्ट बनाए जाते हैं। ये कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद, लखनऊ और कानपूर आदि में हैं। इनके सदस्य सरकार, म्यूनिसिपैलिटियों तथा व्यापारिक संस्थाओं द्वारा नामज़द किये जाते हैं। ये अपने क्षेत्र की भूमि आदि का किराया तथा आवश्यकतानुसार ऋण या सहायता लेते हैं।

उपसंहार—किसी गाँव या नगर में सड़क बनवाना, नालियां बनवाना या साफ कराना, बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करना आदि स्थानीय कार्य उसी स्थान के निवासियों के प्रतिनिधि विशेष उत्साह और कुशलता-पूर्वक कर सकते हैं। इससे स्थानीय संस्थाओं के महत्व का अनुमान हो सकता है। हमारी पंचायतों और जिला-बोर्डों की ही नहीं, म्युनिसिपैलिटियों तक की आर्थिक

स्थिति कैसी है, उनकी आय कितनी कम है और उन्हें अपने कार्य सम्पादन करने के लिए आवश्यक द्रव्य के वास्ते किस प्रकार परमुखापेक्षी रहना पड़ता है, इसका परिचय ऊपर प्रसंगानुसार करा दिया गया है। अस्तु, उनके द्वारा किये जाने वाले कार्यों का असन्तोषप्रद रहना स्वाभाविक ही है। अब प्रान्तीय सरकारों का इन संस्थाओं के प्रति बहुत सहानुभूति तथा सहयोग का भाव है; परन्तु उन्हें भी तो विविध आर्थिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। उनके, मितव्ययिता करने तथा आय बढ़ाने के अधिकार बहुत परिमित ही हैं। आवश्यकता है कि प्रान्तीय सरकारों की स्थिति सुधरे और इन स्थानीय संस्थाओं की यथेष्ट आय-वृद्धि हो। तभी ये संस्थाएँ अपने महत्व-पूर्ण कर्तव्यों का समुचित रीति से पालन कर सकेंगी।

———

सोलहवाँ अध्याय

सरकारी ऋण

"भारत को लाभ पहुँचाने के लिए भी यह ऋण नहीं काढे गये थे। इस लिए इन ख़र्चों को भारत के सिर लादना ईमानदारी की बात नहीं है।"

—जे. सी. कुमारप्पा

बहुत-से पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि जो भारतवर्ष इतना निर्धन है, और जिसके निर्धन होते हुए भी यहां की केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें प्रति वर्ष दो सौ करोड़ रुपये ख़र्च करती हैं, उस पर करोड़ों ही नहीं, अरबों रुपयों का ऋण-भार लदा हुआ है। भारतवर्ष के कुल मिला कर, सरकारी ऋण का परिमाण अब लगभग तेरह सौ करोड़ रुपये है। इस अध्याय में इसी का विचार करना है।

ऋण की आवश्यकता—यह तो स्पष्ट ही है कि यदि कोई सरकार अपना ख़र्च उतने ही रुपये में चला लेती है, जितने की उसे आय होती है, तो उस पर ऋण का भार नहीं होता। परन्तु जब वह अपना ख़र्च इतना बढ़ाले कि उस के लिए उसे पर्याप्त आय न हो सके तो ऋण लेने की आवश्यकता होगी। प्राय:

प्राचीन काल में ऋण लेने की प्रथा कम थी। प्राचीन राजा या बादशाह ऋण नहीं लेते थे। वे अपनी आय के अनुसार ही ख़र्च करते थे, और संकट-काल के लिए भी बहुधा पर्याप्त धन जमा रखते थे। आज-कल तो सरकारें अपनी साख का ख़ूब उपयोग करती है, यहां तक कि अनेक दशाओं में दुरुपयोग भी होता है।

सरकार का ऋणी होना न सदैव कोई अच्छी ही बात होती और न सदैव बुरी ही। इस के अच्छे या बुरे होने का निर्णय उन परिस्थितियों का विचार करके किया जाता है, जिन में ऋण लिया जाता है। सरकार का ऋण लेना उस दशा में उचित और आवश्यक है जब वह कोई आर्थिक या औद्योगिक उन्नति का ऐसा बृहद् कार्य करे, जिससे बहुत समय तक क्रमशः आय होती रहे, अथवा जब देश पर किसी आकस्मिक विदेशी आक्रमण के निवारण के लिए विशेष व्यय-भार आ पड़े। इस के विपरीत, दूसरों को परतंत्र बनाने वाले युद्धों के लिए अथवा अन्य अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण लेना बहुत बुरी नीति है।

भारतवर्ष के सरकारी ऋण की बात—भारतवर्ष के सरकारी ऋण का जन्म अंगरेजों के शासन काल में, अठारहवीं शताब्दी के अन्त में, हुआ। यद्यपि समय-समय पर ऋण चुकाने की मद में करोड़ों रुपया ख़र्च भी किया गया, ब्रिटिश शासन ने इस देश को इतना ऋण-ग्रस्त बना दिया है कि जब तक कुछ

विशेष उपाय काम में न लाये जायँ (जिन का विचार आगे किया जायगा), भारतवर्ष के ऋण-मुक्त होने की कल्पना नहीं की जा सकती।

भारतवर्ष पर ऋण का भार होने का कारण यह है कि सरकार ने भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी न रह कर, अंधाधुन्ध खर्च किया; नये-नये करों के लगाने और बढ़ाने से भी उस का काम नहीं चला। पुनः एशिया और अफ्रीका के कई स्थानों में अंगरेज़ों का व्यापारिक और राजनैतिक आधिपत्य स्थापित करने में भी बहुधा भारतवर्ष के ही द्रव्य और सेना का उपयोग किया गया।

ईस्ट इंडिया कम्पनी भारतवर्ष में इंगलैंड के राजा की प्रतिनिधि थी। उस ने इङ्गलैंड के शत्रु फ्रांस से, और फ्रांस से सहायता-प्राप्त भारतीय नरेशों से, कई युद्ध किए। वह इन का भार न उठा सकी, ऋण-ग्रस्त हो गयी। सन् १७६५ ई० में बंगाल की दीवानी प्राप्त कर लेने पर उस ने अपने ऋण का भार इस प्रान्त से होने वाली आमदनी पर डाल दिया। इसी आय से शक्तिशाली बन कर उसने मैसूर राज्य को हस्तगत किया। फिर, इस बढ़े हुए जन-धन के बल पर उसने मराठा-राज्यों को अपने अधीन किया।

स्व० ऐनीबिसेन्ट ने कहा था कि जिस तलवार से हिन्दुस्तान लिया गया वह हिन्दुस्तान ही की थी। वास्तव में भारतवर्ष के एक भाग के जन-धन के बल से दूसरा भाग, और फिर इन दो भागों के सहारे तीसरा भाग प्राप्त करना, यही यहाँ अंगरेज़ी राज्य के

विस्तार का रहस्य है। भारत के जन-धन का प्रयोग भारतीय राज्यों का अन्त करने में तो किया ही गया, कालान्तर में पराधीन भारतवर्ष अन्य देशों को राजनैतिक अथवा आर्थिक दृष्टि से पराधीन बनाने, और ब्रिटिश साम्राज्य की वृद्धि करने का भी साधन बनाया गया। इस बात की साक्षी प्रत्येक निस्पक्ष इतिहास देगा; हमें यहाँ इस विषय में विस्तार से जाना नहीं है।

अधिकारियों की दुर्नीति और कुशासन के फल-स्वरूप, सन् १८५७ ई० में यहाँ राज्य-क्रान्ति हुई। उस की असफलता का हमें यह भी परिणाम भोगना पड़ा कि उस के दमन करने का सब ख़र्च भारतवर्ष के सरकारी ऋण में जोड़ दिया गया। पश्चात् भारतवर्ष का शासन कम्पनी के हाथ से निकल कर पार्लिमैंट के अधिकार में आया। कम्पनी के सब ऋण और दायित्व का भार, तथा कम्पनी के मूल-धन पर मुनाफ़ा आदि का भी भार भारत-सरकार को सौंपा गया। 'ब्रिटेन ने भारत को ईस्ट इंडिया कम्पनी से ख़रीदा। परन्तु बजाय इसके कि ख़रीदार दाम दे जैसा कि दुनिया का रिवाज़ है—दाम भी भारत को देने पड़े।'

ब्रिटिश पार्लिमैंट के शासन काल में भारत के सरकारी ऋण की वृद्धि और भी तीव्र गति से हुई। नयी-नयी योजनाओं में ख़ूब ख़र्च हुआ। युद्धों के ख़र्च की भी कमी न रही। शासन व्यय भी बढ़ता रहा।

यहाँ के शासन-व्यय के निमित्त बहुत सा धन प्रति वर्ष इंगलैंड

जाता है। इसे 'होम चार्जेज़' या विलायती ख़र्च* कहते हैं इस के अन्तर्गत सूद में यहाँ से प्रति वर्ष एक बड़ी रक़म जाती है। जिस पूँजी पर वह सूद दिया जाता है वह सब उत्पादक कार्यों में ही लगी हुई नहीं है; जो उत्पादक कार्यों में है, उसका भी पूर्ण लाभ इस देश को नहीं मिलता। रेल आदि का बहुत सा सामान यहाँ तैयार कराया जा सकता है, फिर भी सरकार उसके लिए रुपया इंगलैंड भेजती रहती है। रेलों में, आरम्भ में बेहद ख़र्च हुआ और कई वर्ष अपार हानि उठानी पड़ी। इन सब बातों से यहाँ सार्वजनिक ऋण की वृद्धि में सहायता मिली।

अस्तु, क्रमशः भारत का शासन-व्यय बढ़ता गया। राजस्व-सदस्य ने आय का अनुमान कम, और व्यय का अनुमान बहुत अधिक करके करों की दर ऊँची रखी। इस से बीसवीं सदी के प्रथम दस वर्षों में सरकारी बचत का औसत चार करोड़ रुपये रहा। सरकार ने फिर भी करों को कम करने का विचार न किया, और न बचत के रुपये से देश में शिक्षा और स्वास्थ्य का विशेष प्रबन्ध किया। उसने प्रायः बचत के रुपए को अनुत्पादक ऋण कम करने के काम में लगाया। महायुद्ध के समय में भारत-सरकार ने ब्रिटिश सरकार को डेढ़ सौ करोड़ रुपया 'दान' दिया। इस रक़म से भारत-सरकार के अनुत्पादक ऋण में इतनी वृद्धि और हो गयी।

*इस मद में निम्न-लिखित विषयों के ख़र्च का समावेश है—आय प्राप्ति का व्यय, रेल, नहर, डाक और तार, ऋण का सूद, सिविल शासन, मुद्रा, टकसाल और विनिमय, मुल्की मकानात, सेना आदि।

कांग्रेस द्वारा ऋण की जाँच—भारतीय नेताओं ने सरकारी ऋण के बढ़ते हुए भार का समय-समय पर विरोध किया, तथा सरकार को इस के सम्बन्ध में चेतावनी दी। करांची कांग्रेस (१९३१) ने चार विशेषज्ञों की कमेटी* इस बात के लिए नियुक्त की थी कि ईस्ट इंडया कम्पनी और भारत-स्थित ब्रिटिश सरकार के देने वाले आर्थिक लेन-देन तथा भारत के सरकारी ऋण की जाँच कर के अपनी रिपोर्ट दे कि उन में से कौन-कौन सी रक़म भारत को बर्दाश्त करनी चाहिए और कौन-कौन सी इंगलैंड को। यह रिपोर्ट प्रकाशित हो गयी है, और कांग्रेस-कार्य-समिति द्वारा स्वीकृत भी हो चुकी है।

इस रिपोर्ट के समय भारतवर्ष पर ग्यारह सौ करोड़ रुपये का ऋण था। रिपोर्ट में प्रमाण और आँकड़े दे कर बताया गया है कि इस ऋण का अधिकांश भाग अर्थात् ७२९ करोड़ रुपये केवल ब्रिटिश साम्रज्य के हित तथा स्वार्थ-पूर्ति के लिए ही कर्ज़ लिये गये, इस से भारतवर्ष को तनिक लाभ नहीं पहुँचा। कमेटी का मत है कि यह रक़म इंगलैंड को अदा करनी चाहिए; इस का ब्यौरा इस प्रकार है :—

---

*गुजरात विद्यापीठ के श्री. कुमारप्पा इस कमेटी के संयोजक थे, और प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अध्यापक के. टी. शाह तथा बम्बई के भूत-पूर्व ऐडवोकेट-जनरल श्री. भूलाभाई देसाई और श्री० डी. एन. बहादुरजी इस के सदस्य थे।

ईस्ट इंडया कम्पनी के समय में

१—बाहरी युद्ध (प्रथम अफ़गान युद्ध, दो—वर्मा युद्ध, चीन, फ़ारिस, नैपाल आदि के आक्रमण) के लिए	३५	करोड़	रु०
२—कम्पनी का मूलधन और सूद	३७	,,	,,
३—सन् १८५७ ई० के विद्रोह के सम्बन्ध में	४०	,,	,,
ब्रिटिश शासन काल में			
४—बाहरी युद्ध (द्वितीय अफ़गान-युद्ध, तीसरा वर्मा युद्ध, अबीसीनिया, सूडान, मिश्र आदि के आक्रमण)	३७	,,	,,
५—योरपीय महायुद्ध की भेंट	१८६	,,	,,
६—महायुद्ध सम्बन्धी अधिक सैनिक व्यय	१७१	,,	,,
७—विविध	२०	,,	,,
८—वर्मा के सम्बन्ध में	८२	,,	,,
९—रिवर्स कौंसिल (विनिमय सम्बन्धी)	३५	,,	,,
१०—रेलवे	८३	,,	,,
योग	७२९	,,	,,

१—कम्पनी के विदेशी युद्धों का खर्च भारत पर लादने के अनौचित्य के सम्बन्ध में सर जार्ज विनगेट ने कहा है, "हमारे अधिकांश एशियाई युद्ध जो साम्राज्य-सीमा के बाहर लड़े गये हैं, भारत-सरकार के जन-धन खर्च करके लड़े गये हैं। इन में से कुछ तो बिलकुल ब्रिटिश-हित के ही लिये लड़े गये और कुछ का यदि भारत से सम्बन्ध रहा भी, तो वह बहुत दूर का। वे ब्रिटिश मंत्री के आज्ञानुसार ही भारत-सरकार द्वारा लड़े गये। इस लिए यह बिलकुल स्पष्ट है कि ब्रिटिश सरकार ही उस के परिणाम

के लिए जिम्मेदार है। पर हम ने कभी भी भारत को, उसकी सेना और सम्पत्ति के बदले में उचित सहायता नहीं दी। यह हमारी पक्षपात-पूर्ण और स्वार्थमय नीति का अकाट्य प्रमाण है।"

२—ईस्ट इंडया कम्पनी का ६० लाख पौंड का मूल धन, सन् १८४९ में १२० लाख पौंड दे कर चुकता किया गया। इस पर १० प्रति शत सूद भी दिया जाता था; १८३३ से १८५७ तक का सूद १५० लाख पौंड, और १८५८ से १८७४ तक का सूद १०० लाख पौंड। इस प्रकार मूलधन और सूद में ३७० लाख पौंड दिये गये। इस सौदे के लिए भारतीय जनता उत्तरदायी नहीं हो सकती; इस से भारत को कोई लाभ नहीं हुआ, जो कुछ भी लाभ हुआ वह ब्रिटिश जनता को ही हुआ। कम्पनी भारतवर्ष के लिए एक असह्य भार थी, और उसने अपने व्यापारिक और राजनैतिक विभागों का हिसाब अलग न रख कर, तथा अनेक ऐसे ख़र्चों को भो शासन सम्बन्धी दिखला कर भारतवर्ष के ज़िम्मे डाल दिया, जिन का यहाँ की जनता के हित से कुछ भी सम्बन्ध न था, अथवा बहुत ही कम था। तथापि भारतवर्ष को उस के ऋण से मुक्त न कर के स्थायी रूप से उस के लिए ज़िम्मेवार कर दिया, और हां, कुछ अंश में वह ऋण और भी बढ़ा दिया।

३—सन् १८५७ ई० में यहाँ कम्पनी के अन्याय-युक्त व्यवहार से मुक्ति के प्रयत्न-स्वरूप विद्रोह हुआ। इस के दमन में जो ख़र्च हुआ, वह सब भारतवर्ष के जिम्मे डाल दिया गया। इस के सम्बन्ध

में भारत-सचिव ने सन् १८७२ ई० में लिखा था कि यदि ऐसा युद्ध साम्राज्य के किसी अन्य भाग में आवश्यक होता तो उसका अधिकांश भार ब्रिटिश सरकार द्वारा बर्दाश्त किया जाता, पर भारतीय विद्रोह सम्बन्धी खर्च का एक पैसा भी ब्रिटिश खज़ाने से नहीं दिया गया। इस सम्बन्ध में दक्षिण अफ्रिका के बोअर युद्ध का उदाहरण देते हुए कहा गया है कि उसका सारा खर्च ही ब्रिटिश सरकार ने अपने ऊपर नहीं लिया, वरन्, उसने ३९० लाख रुपया वहाँ वालों के नष्ट-भ्रष्ट कृषि-कार्य के लिए भी दिया था।

४—ब्रिटिश शासन काल में जो विदेशी युद्ध हुए हैं, वे भी ब्रिटिश साम्राज्य के हित की दृष्टि से हुए हैं, भारतीय हित की दृष्टि से नहीं। इस कथन के समर्थन में अनेक ब्रिटिश अधिकारियों के लेख विद्यमान है।

५—महायुद्ध में भारतवर्ष की ओर से १८९ करोड़ रुपये का दान और सहायता दी गयी। शासन विधान के अनुसार भारत-सरकार को ऐसी सहायता करने का कोई अधिकार नहीं था, और यह सहायता भारतवर्ष की आर्थिक सामर्थ्य से बाहर थी। भारतवर्ष ने इस सहायता के अतिरिक्त जन, धन और युद्ध-सामग्री आदि से इंगलैंड की जितनी सहायता की वह भी किसी ब्रिटिश उपनिवेश से कहीं अधिक थी।

६—महायुद्ध सम्बन्धी अधिक सैनिक व्यय की रक़म (१७१ करोड़) सन् १९१४-१५ के सैनिक खर्च को आधार मान कर

निकाली गयी है। अर्थात १९१५-१६ से लेकर १९२०-२१ तक तक उपर्युक्त वर्ष की अपेक्षा जितना अधिक ख़र्च हुआ उसका योगफल है।

७—विविध व्यय की मद्द में भारतमंत्री का कार्यालय, अदन, फ़ारिस और चीन के दूतावास आदि के धर्म-प्रचार सम्बन्धी ख़र्च सम्मिलित है। कितने ही ब्रिटिश अधिकारियों का मत है कि यह खर्च साम्राज्य-सरकार की ओर से होना चाहिए।

८--वर्मा सम्बन्धी ख़र्च में १५ करोड़ रुपया वह है, जो सन् १८८६ ई० से १९३१ ई० तक वर्मा का बजट पूरा करने के लिए दिया गया है, २२ करोड़ रुपया सूद और रेलवे के घाटे के सम्वन्ध में है, और प्रति वर्ष एक करोड़ रुपये के हिसाब से १८८६ से १९३१ तक का ४५ करोड़ रुपया देश-रक्षा के ख़र्च में वर्मा का हिस्सा है।

९--भारत-सरकार की विनिमय-दर और मुद्रा-नीति के कारण देश को व्यापार में बहुत हानि हुई है, एवं अपनी संचित चांदी का मूल्य घट जाने से भी बड़ा नुकसान हुआ है। परन्तु इस हानि को ऐसा ख़र्च कहा जा सकता है जो भारतवर्ष को अपने शासकों की आर्थिक विषय समझने की अयोग्यता और कुप्रबन्ध के लिए करना पड़ा। किन्तु भारतवर्ष का निर्यात घट जाने से भारत-सरकार द्वारा उलटी हुंडिया निकाले जाने से भारतवर्ष को

जो ३५ करोड़ रुपये की हानि हुई है, वह ब्रिटिश सरकार को भरनी चाहिए।

१०—भारत में अधिकांश रेलवे लाइनें सेना की सुविधा के लिए बनायी गयी हैं। सीमा-प्रान्त और अदन की लाइन, जो ३३ करोड़ खर्च कर बनायी गयी है, के सम्बन्ध में तो सरकार स्वयं इस बात को मंजूर करती है। इसके अतिरिक्त कम्पनियों को ऐसी बेजा शर्तों पर ठेके दिये गये थे कि सरकारी अधिकार में आने के वक्त भारतवर्ष को ५० करोड़ रुपये उन्हें देने पड़े।

यह संक्षेप में उन रकमों का विचार हुआ, जो ऋण-जांच कमेटी के मत से ब्रिटिश सरकार को चुकानी चाहिए। कमेटी ने अपनी सिफारिशों में कहा है कि इस समय भारतवर्ष पर ११ सौ करोड़ रुपये का कर्ज है। भारत के इंगलैण्ड के अधीन होने से उसे जो आर्थिक तथा राजनैतिक लाभ हो रहा है, उसे और भारतीय व्यापार तथा व्यवसाय की गिरती अवस्था का ध्यान रखते हुए, कमेटी सिफारिश करती है कि जैसे आयलैंण्ड के स्वतंत्र होते समय उसका सारा कर्ज ग्रेट ब्रिटेन ने अपने ऊपर ले लिया था, उसी प्रकार भारत को अपना स्वतंत्र शासन, बिना किसी बोझ के आरम्भ करने दिया जाय अर्थात् इस जांच के अनुसार ७२९ करोड़ का देनदार तो इंगलैण्ड है ही, साथ ही भारत पर ३७१ करोड़ का जो कर्ज बाकी रहता है, ग्रेट ब्रिटेन उससे भी मुक्त कर दे। भारत-की उन्नति के लिए यह जरूरी है कि वह अपनी राष्ट्रीय आय

केवल राष्ट्रीय कामों में ही खर्च करे, और यह तभी संभव है जब कि वह अपनी सेना तथा व्यवस्था के खर्च को जरूरत के अनुसार कम कर दे, और साथ ही बाहरी कर्ज़ के बोझ से मुक्त हो जाय।

श्रीयुत कुमारप्पा ने अपने दो नोट अलग लिखे हैं। पहले में आपने कहा है कि आज तक भारतीय सेना पर जो २१२८ करोड़ खर्च हुआ है, उसमें ५४० करोड़ बिलकुल ब्रिटिश-हित में ही खर्च किया गया है। इस लिए वह भारत को मुजरा मिलना चाहिए। दूसरे नोट में आपने कहा है कि कर्ज़ की रक़मों पर जो १०५० करोड़ ब्याज में दिया गया है, ५३६ करोड़ रुपया उस रकम का ब्याज है, जो इंगलैण्ड को देना चाहिए। इस प्रकार यदि श्री० कुमारप्पा की ये ही दोनों राय मान ली जायँ तो भी भारत का सब कर्ज़ खतम हो जाता है।

वर्तमान ऋण—ऊपर बताया गया है कि कमेटी की जाँच के समय सरकारी ऋण ग्यारह सौ करोड़ रुपये था। अब यह तेरह सौ करोड़ है। इस में से लगभग १००० करोड़ रुपये का ऋण ऐसा है जिस के बदले में किसी न किसी प्रकार की सम्पत्ति विद्यमान है; साढ़े सात सौ करोड़ रुपये तो रेलों में लगे हुए हैं, और ढाई सौ करोड़ में कुछ रक़म नहरों आदि व्यवसायिक कार्यों में लगी हुई, कुछ प्रान्तों तथा देशी राज्यों को दी हुई, और कुछ नक़द मौजूद है। ऋण के लगभग तीन सौ करोड़ रुपये ऐसे हैं, जिन

के बदले में कोई सम्पत्ति नहीं है; ऐसा ऋण 'अनुत्पादक ऋण' कहलाता है।

इस प्रकार अनुत्पादक ऋण का परिणाम बहुत कम दिखायी देता है। ऐसी कल्पना की जा सकती है कि अधिकांश सरकारी ऋण ऐसे कार्यों में ख़र्च हुआ है, जिन से आय की सम्भावना है, या जो पर्याप्त आय दे रहे हैं। परन्तु यह बात भ्रम-पूर्ण है। यदि सरकारी बहियों में इस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी के ऋण, और व्यर्थ जारी की हुई लड़ाइयों के ख़र्च का नाम नहीं पाया जाता तो इस का कारण यह नहीं है कि यह ख़र्च कभी हुआ ही नहीं, या ब्रिटिश सरकार ने इसे अपने कोष से चुका देने की कृपा की, वरन् यह है कि भारत-सरकार हर वर्ष भारत-वासियों पर भारी कर लगा कर अपनी आवश्यकता से अधिक रुपया वसूल करती रही और बचत को इन ऋणों के चुकाने में लगाती रही। जिन दिनों यह कहा जाता था कि शिक्षा की उन्नति या स्वास्थ्य सम्बन्धी योजनाओं पर ख़र्च करने के लिए रुपया नहीं है, उन्हीं दिनों इन पुराने ऋणों को हिसाब की बहियों से उड़ाने के लिए करोड़ों रुपये खर्च किये जाते रहे। इसी का यह परिणाम है कि यदि कोई इस समय भारत-सरकार के हिसाब को देखे तो उसे इस बात का पता ही न चले कि भारत के ऋण में कभी यह ऊपर लिखी रकमें भी सम्मिलित थीं। [प्रोफ़ेसर अमरनाथ वाली एम. ए. और मोहन लाल बी. ए. के 'भारतीय अर्थशास्त्र' के आधार पर]।

यद्यपि ब्रिटिश अधिकारी प्रायः इस ऋण को भारतवर्ष का 'राष्ट्रीय ऋण' कहते नहीं सकुचाते, वास्तव में यह कथन भ्रम-मूलक है। कारण, यह ऋण भारतीय राष्ट्र की स्वीकृति से या भारतीय जनता के हितार्थ नहीं लिया गया, यह तो ब्रिटिश राष्ट्र के प्रतिनिधियों

की नीति और कार्यों का फल है, उन्हीं पर इस का उत्तर-दायित्व है।

ऋण का सूद—वर्तमान; समस्त ऋण अर्थात् तेरह सौ करोड़ रुपये का सूद भारत-सरकार के खर्च में सूद की मद्द में नहीं दिखलाया जाता। उस में तो केवल तेरह-चौदह करोड़ रुपये वार्षिक ही बताया जाता है। बात यह है कि जितने ऋण के बदले में रेल का सामान आदि किसी न किसी प्रकार की सम्पत्ति विद्यमान है, उस का सूद रेल आदि की मद्द में दिखाया जाता है। जिस शेष तीन सौ करोड़ के ऋण के बदले में किसी प्रकार की सम्पत्ति नहीं है, उसी 'अनुत्पादक' ऋण का सूद, सूद की मद्द में दिखाया जाता है। यदि सब प्रकार के कुल ऋण की रकम का सूद इकट्ठा दिखाया जाय तो उस का परिमाण लगभग पचास करोड़ रुपये वार्षिक हो।

भारतवर्ष को इस व्यर्थ के व्यय-भार से बचाने के लिए, अथवा कम से कम इस भार को काफी कम करने के लिए सरकार को ऋण-जांच-कमेटी की सिफारिशों पर विचार करना चाहिए जो ऊपर बतायी जा चुकी हैं।

विशेष वक्तव्य—हमने ऊपर भारतवर्ष को ऋण मुक्त करने की बात कही है। देश की आर्थिक उन्नति के लिए उस के राजस्व पर से वर्तमान सूद का भार हटना आवश्यक है। परन्तु ब्रिटिश अधिकारियों के वर्तमान भावों का विचार करते हुए अभी उस

की आशा नहीं होती। तथापि यदि दोनों देशों का परस्पर में अच्छा सम्बन्ध रहना है तो इस आशा की पूर्ति हो कर रहेगी; अभी नहीं, तो कुछ समय बाद।

कुछ बातों की ओर ध्यान दिया जाना तो तुरन्त ही आवश्यक है। वे बातें निम्न लिखित है :—

१—जनता के प्रतिनिधियों के मत का लिहाज़ करते हुए, केन्द्रीय सरकार को अपना खर्च काफ़ी कम कर देना चाहिए (इस के सम्बन्ध में विशेष अन्यत्र लिखा गया है), जिस से अनुत्पादक ऋण बढ़ाने की आवश्यकता न रह जाय; जिस सीमा तक वह पहुंच गया है, उस से आगे न बढ़ते हुए भी, सरकार को जन-हितकारी कार्यों के लिए कुछ अधिक रुपया मिल सके।

२—उत्पादक कार्यों के लिए सरकार का ऋण लेना अनुचित नहीं, वरन आवश्यक है। 'उत्पादक' कार्यों से हमारा अभिप्राय: उन कार्यों से ही नहीं है, जिन की आय उनके संचालन-व्यय से अधिक हो, जिन से सरकार को मुनाफा हो। हम शिक्षा, स्वास्थ्य उद्योग-धन्धों आदि जन-हितकारी कार्यों को भी इसी श्रेणी में गिनते हैं, जिन से जनता की सुख-स्मृद्धि बढ़ती है। इन के लिए पँचवर्षीय या अन्य योजनाएँ बना कर उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। ये कार्य रुपये के अभाव से रुके नहीं रहने चाहिएँ; इन के लिए आवश्यकतानुसार ऋण लेना चाहिए।

३—ऋण के विषय पर केन्द्रीय व्यवस्थापक सभा के लोक-निर्वाचित सदस्यों का पूर्ण नियंत्रण रहें, वे ही यह निश्चय करें कि कब किस कार्य के लिए कितना ऋण लेना है। वर्तमान दशा में गवर्नर-जनरल और भारत-मंत्री आदि को ही ऋण सम्बन्धी समस्त अधिकार है; यह न होना चाहिए।

४—ऋण यथा-सम्भव स्वदेश में ही लिया जाना चाहिए। विदेश में ऋण लेने से सूद का रुपया देश से बाहर जाता है, इस के अतिरिक्त विदेशी ऋण-दाता या साहूकार अपने व्यापारिक और राजनैतिक अधिकारों की वृद्धि का भी लक्ष्य रखते हैं। इस लिए जहाँ तक बने, विदेशों से ऋण न लिया जाय, और यदि किसी विशेष अवस्था में लेना ही पड़े तो वह उसी देश से लिया जाय, जहाँ से ऋण अच्छी शर्तों पर, तथा कम सूद पर मिल सके। वर्तमान अवस्था में भारत-सरकार को ऐसा करने की स्वतंत्रता नहीं है। उसे तो ऋण ब्रिटिश सरकार के द्वारा, इङ्गलैंड में ही लेना पड़ता है, चाहे वह किसी शर्त पर, और किसी भी दर पर मिले।

यह स्पष्ट ही है कि ये बातें भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के प्रश्न से सम्बन्धित हैं, पराधीन भारत अपने ऋण सन्बन्धी विषयों में भी परमुखापेक्षी है।

————

सतरहवाँ अध्याय

आर्थिक स्वराज्य

"प्रजा का अपने जातीय धन और आय-व्यय पर सम्पूर्ण अधिकार होना चाहिए और यह इस लिए कि धन और जीवन असल में पर्यायवाची शब्द हैं, क्योंकि धन से ही प्रजा धन्य है, जीवित है, और है उन्नतिशील। यदि प्रजा धन-हीन है, साथ ही उसका अपने बजट पर अधिकार नहीं है तो फिर उसका मूल्य ही क्या है?"

पिछले अध्यायों में भारतवर्ष के सरकारी आय-व्यय की विविध मदों का यथा-सम्भव ब्यौरेवार वर्णन किया गया है। अब, इस अध्याय में यह विचार करना है कि वहाँ की राजस्व-नीति कहाँ तक राष्ट्रीय हितों के अनुकूल अथवा प्रतिकूल है, और हमें आर्थिक विषयों के स्वराज्य की कैसी आवश्यकता है। वर्तमान अवस्था में भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत एक अधीन या अर्द्ध-स्वाधीन देश होने से यहाँ की राजस्व-नीति बहुत-कुछ ब्रिटिश हित को लक्ष्य में रख कर निर्धारित की जाती है, अतः पहले उसी के सम्बन्ध में लिखा जाता है।

इंगलैंड और भारत का राजस्व-सम्बन्ध—भारतवर्ष की व्यापार-नीति ऐसी रखी जाती है, अर्थात् यहाँ आयात-निर्यात

कर इस प्रकार निर्धारित किये जाते हैं कि इंगलैंड के कारखाने वालों को लाभ हो, उन्हें हानि तो किसी भी दशा में न हो। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बहुधा भारतवर्ष के आर्थिक हितों की अवहेलना की जाती है। पुनः, यहाँ अनेक अंगरेज़ विविध मुल्की तथा फ़ौजी पदों पर थोड़े-थोड़े समय काम करके अपने 'स्वदेश' को लौट जाते हैं, और यहां से प्राप्त अनुभव से इंगलैंड को लाभ पहुँचाते हैं। तथापि उन्हें भारतवर्ष में काम करते समय इतना अधिक वेतन और भत्ता आदि दिया जाता है, जो इस देश का इंगलैंड से वर्तमान राजनैतिक सम्बन्ध न रहने की दशा में कदापि नहीं मिल सकता। बहुतों को तो यहाँ से काम छोड़ कर चले जाने पर पेन्शन भी खूब मिलती है।

भारतवर्ष के सरकारी कोष से प्रति वर्ष 'होम चार्जेस,' के नाम से एक बड़ी रकम इंगलैंड भेजी जाती है; यद्यपि उसका हिसाब प्रकाशित होता है, और प्रत्यक्ष में कोई रकम ऐसी नहीं होती जो भारतवर्ष के निमित्त खर्च न की गयी हो, इस विषय में काफी मत भेद रहता है, कि किसी विशेष रकम का भार कहाँ तक वास्तव में भारत पर डाला जाना चाहिए।

भारतवर्ष की आर्थिक पराधीनता—भारतवर्ष को अपने राजस्व की व्यवस्था करने में बहुत कम स्वतंत्रता है। यहाँ के लोक-प्रतिनिधियों को अपनी इच्छानुसार देश का आय-व्यय बढ़ाने घटाने का अधिकार नहीं है। सन् १९३८-३९ के अनुमान-पत्र का उदाहरण लें तो १२० करोड़ रुपये के केन्द्रीय व्यय में से

सेना, रेल और सूद तथा 'राजनैतिक' खर्च, एवं अनेक उच्च पदाधिकारियों के वेतन और भत्ते आदि के १०२ करोड़ रुपये से अधिक के व्यय पर अर्थात् लगभग ८५ प्रतिशत पर व्यवस्थापक मंडल का मत नहीं लिया जाता। शेष मदों के जिस थोड़े-से व्यय के सम्बन्ध में मत लिया जाता है, उनके सम्बन्ध में भी, आवश्यकता समझने पर गवर्नर-जनरल अपने उत्तरदायित्व के विचार से व्यवस्थापक मंडल के निर्णय के विरुद्ध कार्य कर सकता है। सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार, यहाँ प्रान्तों में स्वराज्य की स्थापना हो जाने की बात कही जाती है, पर इस स्वराज्य में भी अनेक पदाधिकारियों के वेतन आदि के व्यय पर प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों का कोई नियंत्रण नहीं है।

आय की बात लीजिए। हमें विदेशी माल पर, अथवा विदेशी कम्पनियों द्वारा बनाये हुए यहाँ के माल पर यथेष्ठ कर लगाने का अधिकार नहीं। सरकार नमक पर टैक्स कम न करे तो हम केवल मौखिक विरोध कर पाते हैं, उस पर ध्यान देना या न देना शासकों की कृपा पर निर्भर है। हमारी 'गोल्ड स्टैन्डर्ड रिज़र्व' आदि की करोड़ों रुपये की रक़म भारत-मंत्री के पास जमा रहती है, उससे इंगलैंड के बड़े बड़े बैंक और धनी व्यापारी लाभ उठाते हैं; निर्धन भारत अपने ही कोष का उपयोग नहीं कर सकता। केन्द्रीय सरकार, व्यवस्थापक मंडल का मत लिये बिना ही, इंगलैंड से चाहे-जितना ऋण लेकर हम पर लाद देती है, चाहे अन्य देशों से ऋण अधिक अनुकूल शर्तों पर ही क्यों न मिलता हो। पुनः इंगलैंड के

जो व्यक्ति या संस्थाएँ हमें ऋण देकर सूद का लाभ उठाती हैं, उन पर हमें आय-कर तक लगाने का अधिकार नहीं। कहां तक कहें, हमारी पराधीनता सूचक बातों की सूची काफी बड़ी है !

इस का परिणाम; आर्थिक दुर्दशा--आर्थिक पराधीनता का एक अनिवार्य परिणाम देश का आत्मिक या नैतिक पतन है। उस की बात यहाँ छोड़ ही दें, तो हमारी आर्थिक दुर्दशा भी इस समय कुछ कम नहीं है। वीर-प्रसवनी भारत-भूमि के पुत्रों में निर्बलता, रुग्नता और निर्जीवता देख कर कौन सहृदय दो आंसू न बहावेगा? बच्चे, बूढ़े और रोगियों के लिए दूध आदि की भयङ्कर कमी है, हमारे लाखों भाई-बहिनों को दोनों वक्त खाने को नहीं मिलता, और उनसे भी अधिक वे लोग हैं, जो हमेशा कम खाने से शरीर-पोषण-योग्य खुराक नहीं पाते—पा नहीं सकते। इसके सिवा हिन्दुस्तान के लाखों गांवों में दिन-दिन भूकों मरते हुए कितने ग़रीब होंगे, यह कौन कह सकता है। इस परिस्थिति का ज़िम्मेदार कौन है? क्या ब्रिटिश-शासन के भयंकर ख़र्च के लिए वसूल किये जाने वाले नये नये टैक्स, सेना और सूद आदि में इतना अधिक खर्च हो जाना कि शिक्षा, स्वास्थ्य और उद्योग-धंधों के लिए केवल नाम-मात्र की रक़म रह जाय, बड़ी-बड़ी अधिकांश नौकरियाँ विदेशियों को देना और भारत-सन्तान को अपने ही देश में परदेशी की तरह रखना, उक्त परिस्थिति के कुछ कारण नहीं है? जो लोग ब्रिटिश शासन के अमन-चैन पर मुग्ध हैं, वे तस्वीर का यह दूसरा पहलू भी तो देखें!

आर्थिक स्वराज्य की आवश्यकता—अस्तु, उक्त शोचनीय परिस्थिति का इलाज क्या है ? आर्थिक पराधीनता दूर हो, और आर्थिक दृष्टि से तो हमें स्वराज्य अवश्य ही मिल जाय। इस का अभिप्राय यह है कि भारत-सरकार और प्रान्तिक सरकारों का समस्त आय-व्यय भारतीय प्रतिनिधियों के अधिकार में रहे। वे भारतवर्ष के हित को लक्ष्य में रख कर चाहे जिस खर्च में कमी करें, और चाहे जिस पदार्थ पर टैक्स लगावें। इस समय केन्द्रीय शासक और प्रान्तीय गवर्नर भारत-मंत्री और ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी हैं, और भारतवर्ष के खजाने से वेतन पाते हुए स्वभावतः वे इङ्गलैंड का हित-साधन करने की चिन्ता में रहते हैं। यह न हो कर उन सब को भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। आगे हम आर्थिक स्वराज्य सम्बन्धी मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख करते हैं :--

१—इस समय यहाँ सेना, रेल और सूद आदि केन्द्रीय मदों के लगभग ८५ प्रतिशत, और प्रान्तीय व्यय की भी कितनी रक़मों पर व्यवस्थापक मंडलों का नियंत्रण नहीं है। यह बात तुरन्त दूर होनी चाहिए। न्याय की बात यह है कि भारतीय आय-व्यय की पाई-पाई पर भारतीय जनता के प्रतिनिधियों का अधिकार हो। राज्य प्रबन्ध के लिए टैक्स तो सदैव ही देने पड़ेंगे, परन्तु आर्थिक स्वराज्य होने की दशा में उनका परिमाण, वसूल करने का ढङ्ग, तथा उन्हें खर्च करने की व्यवस्था आदि प्रत्येक बात में सार्वजनिक हित का ध्यान रखा जायगा।

२—हमें उच्च से उच्च सरकारी पदाधिकारी की नियुक्ति बर्खास्तगी और वेतन-निर्धारण का अधिकार होना चाहिए। उदाहरणवत् इस समय गवर्नर-जनरल को प्रति वर्ष ढाई लाख रुपये वेतन और विविध प्रकार के भत्तों सहित कुल मिला कर सतरह-अठारह लाख रुपये देने होते हैं। हम इस पद के लिए पाँच सौ रुपये मासिक वेतन और एक हज़ार रुपये भत्ता दें, और इस प्रकार सालाना अठारह हजार रुपये में अठारह लाख का काम निकालना चाहें तो इस में कोई बाधा क्यों होनी चाहिए !

३—हमें अपने आयात-निर्यात कर निर्धारित करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिए, जिस से भारतीय हितों का सम्यक् ध्यान रखा जा सके, और इङ्गलैंड या उस के उपनिवेशों के लिए व्यर्थ की हानि न उठानी पड़े। इसी प्रकार यदि विदेशी कम्पनियाँ भारतवर्ष में अपनी पूँजी लगा कर यहाँ के कच्चे पदार्थों और सस्ती मज़दूरी से लाभ उठाते हुए यहाँ का शोषण करना चाहें तो हमें उन पर भी यथेष्ट आर्थिक प्रतिबन्ध लगाने का अधिकार होना चाहिए।

४—हमें अपनी मुद्रा, टकसाल की व्यवस्था करने और विनिमय की दर निर्धारित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। और मुद्रा-ढलाई-लाभ-कोष ('गोल्ड स्टेंडर्ड रिजर्व') आदि का समस्त रुपया समुद्र पार इङ्गलैंड में न रख कर भारतवर्ष में ही रखने का अधिकार होना चाहिए, जिससे वह यहां की जनता के काम आ सके।

५—भारतीय व्यवस्थापक सभा के लोक-निर्वाचित प्रतिनिधियों को आवश्यकतानुसार रुपया उधार लेने की पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए; जब भारतवर्ष में काफ़ी रुपया न मिले तो रूस, जर्मनी, अमरीका आदि जिस देश से हमें अनुकूल शर्तों, तथा कम सूद पर मिले, वहां से हम ले सकें, केवल इङ्गलैंड से ही लेने का बन्धन हम पर न होना चाहिए। साथ ही जो आदमी या कम्पनियाँ आदि भारतवर्ष से सूद की आमदनी प्राप्त करें, उन पर हमें आय-कर लगाने का अधिकार होना चाहिए।

६--भारत के सरकारी ऋण के सम्बन्ध में कांग्रेस द्वारा नियुक्त जाँच-कमेटी का निर्णय पहले दिया जा चुका है, यदि ब्रिटिश सरकार उस से सहमत तो न हो तो दूसरी निस्पक्ष और स्वतंत्र सदस्यों की कमेटी द्वारा जांच करा ले। निर्णय ऐसा होना चाहिए जिस में न्याय, ईमानदारी, और भारतीय हित का सम्यक् विचार रहे।

७—रिजर्व बैङ्क के संगठन में भारतीय हितों के सुरक्षित रखने और उस पर भारतीयों का नियंत्रण रहने की समुचित व्यवस्था होनी चाहिए, जिस से वह हमारी कृषि, उद्योग और व्यापार तथा विनिमय आदि के सम्बन्ध में यथेष्ठ सहायक हो सके।

८—हमें विदेशों से व्यापारिक संधि करने, भारतीय हित का ध्यान रखते हुए उन्हें आवश्यक सुविधाएँ देने, तथा वहाँ अपने वाणिज्य-दूत या कमिश्नर रखने आदि का अधिकार होना चाहिए।

इस प्रकार हमारा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार व्यर्थ के बन्धनों से जकड़ा न रहना चाहिए।

यहां कुछ थोड़ी-सो ही बातों का उल्लख किया गया है, इन से आर्थिक स्वराज्य की रूप रेखा का आभास हो सकता है।

हमारी आर्थिक उन्नति—जब स्वराज्य ही हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है, तो आर्थिक स्वराज्य तो उसका एक अंश ही है। इसकी चाह कोई अनोखी बात नहीं है। हम अपने देश की—अपने भाई-बहिनों की—आर्थिक उन्नति चाहते हैं, यह आर्थिक स्वराज्य विना कठिन ही नहीं, असम्भव है। आर्थिक स्वराज्य पाकर हम अपने देश-प्रेमी नवयुवकों को सैनिक शिक्षा देकर ऐसे आदमी हर समय तैयार रखेंगे, जो जरूरत के समय स्वयं जननी-जन्मभूमि की रक्षा करें। हम स्थायी सेना बहुत कम रखेंगे और उसमें केन्द्रीय (भारत-सरकार की) आय का लगभग आधा भाग स्वाहा न करके उसमें बहुत बचत करेंगे, और उस बचत से अपने बहुत से उपयोगी कार्य निकालेंगे। अन्यान्य बातों में हम अपने देश से अविद्यांधकार को दूर कर ज्ञान के प्रकाश में रहेंगे। मँहगी, रोगों और व्याधियों का वहिष्कार कर देंगे। कृषकों पर भूमि-कर का भार कम कर के हम इन्हें सुख से पेट-भर रोटी खाने देंगे। उद्योग-धन्धों की उन्नति के यथेष्ठ साधन प्रस्तुत करके हम अपने इधर-उधर वृथा भटकने वाले बेकारों के लिए आजीविका-प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करेंगे। इस प्रकार आर्थिक स्वराज्य से देश में सुख-शान्ति का राज्य होगा।

परिशिष्ट (१)

भारतीय राजस्व-व्यवस्था

"देश की आन्तरिक व्यवस्था लोक-निर्वाचित प्रतिनिधि-सभा द्वारा हुआ करे, जिसे खज़ाने पर पूर्ण अधिकार हो; भारतवर्ष की प्रबन्धकारिणी सभा (भारत-सरकार) तथा उस के विभागों के पदाधिकारी निर्वाचित लोक-प्रतिनिधियों की सभा के प्रति उत्तरदायी रहें।" —ऐनी बिसेन्ट

भारतीय राजस्व सम्बन्धी विविध बातों का विचार कर चुकने पर अब हमें यह बतलाना है कि यहाँ आय-व्यय के अनुमान-पत्र का नक्शा किस प्रकार तैयार किया जाता है, किस प्रकार एवं कहां तक वह जनता के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकार होता है, तथा आय-व्यय का हिसाब किस प्रकार रखा जाता है। जैसा कि पिछले अध्याय में बताया जा चुका है और आगे भी उल्लेख किया जायगा, भारतवर्ष अपनी राजस्व-व्यवस्था में स्वाधीन नहीं है, वह बहुत-कुछ ब्रिटिश पार्लिमेंट के अधीन है। यहाँ प्रान्तों में कई विषयों पर अन्तिम अधिकार गवर्नरों को है। और, केन्द्र के तो ८५ प्रतिशत व्यय पर, तथा कर सम्बन्धी प्रस्ताव के विषय में भी गवर्नर-जनरल को ही मुख्य अधिकार है। गवर्नर एवं गवर्नर-जनरल ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी हैं, भारतीय लोक-प्रतिनिधियों के प्रति नहीं।

आय-व्यय अनुमान-पत्र--इस में आगामी वर्ष की अनुमानित आय और व्यय व्यौरेवार लिखे जाते हैं। इस के अतिरिक्त, तुलना की सुविधा के लिए इस में गत वर्ष की आय-व्यय के वास्तविक अंक दिये जाते हैं, और प्रचलित वर्ष की आय-व्यय के नौ-दस महीने के वास्तविक, और शेष दो-तीन महीनों के अनुमानित अंकों का योग दिया जाता है, जिसे संशोधित अनुमान कहते हैं। सरकारी हिसाब के लिए किसी वर्ष की पहली अप्रैल से अगले वर्ष की इकत्तीस मार्च तक एक साल समझा जाता है।

आय-व्यय-अनुमान-पत्र के विषय—सन् १९१९ ई० के शासन-सुधारों के बाद से प्रान्तीय सरकारों के आय-व्यय के अंक केन्द्रीय सरकार के बजट में नहीं रखे जाते। प्रत्येक प्रांत अपने आय-व्यय का अनुमान-पत्र अलग-अलग बनाता है। इस प्रकार समस्त ब्रिटिश भारत के लिए एक बजट न हो कर कई बजट होते हैं।

केन्द्रीय सरकार के आय-व्यय-अनुमान-पत्र में निम्नलिखित बातें रहती हैं :—

१—केन्द्रीय सिविल (मुल्की) विभागों का आय-व्यय-अनुमान; तथा चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों का आय-व्यय-अनुमान (ये प्रान्त केन्द्रीय सरकार द्वारा ही शासित होते हैं)।

२—उन विभागों के आय-व्यय का अनुमान, जो समस्त देश के लिए आवश्यक हैं, यथा, फ़ौज, रेल, डाक, तार।

३—इंडया आफ़िस के आय-व्यय का अनुमान।

४—भारतवर्ष के हाई कमिश्नर सम्बन्धी आय-व्यय का अनुमान।

आय-व्यय-अनुमान-पत्र किस प्रकार तैयार किया जाता है?—प्राय: अगस्त या सितम्बर के महिने में प्रत्येक प्रान्त में भिन्न-भिन्न विभागों के मुख्य अधिकारी अगले वर्ष की आय और व्यय का अनुमान प्रान्तीय सरकार के पास भेज देते हैं। ख़र्च को दो भागों में बाँट कर दिखाया जाता है:—१—जो ख़र्च साधारणतया सदैव होता रहता है, और सरकार द्वारा स्वीकृत हो चुका है, जैसे उच्च सरकारी कर्मचारियों का वेतन। २—जो ख़र्च नया होता है, अर्थात् उस वर्ष विशेष करना होता है।

भिन्न-भिन्न विभागों से प्राप्त हुए नक्शों को एकत्रित कर के प्रान्तीय सरकार के सम्बन्धित सदस्य सरकार द्वारा स्वीकृत ख़र्च का एक नक्शा बना देते हैं। पश्चात्, अर्थ-सदस्य इन सब नक्शों की अच्छी तरह जाँच करके इन सब का एक नक्शा बनाता है। जो रक़में नये ख़र्च की होती हैं, वे विचारार्थ अर्थ-समिति में पेश की जाती हैं, जिसमें अर्थ-सदस्य के अतिरिक्त व्यवस्थापक-मंडल के कुछ निर्वाचित सदस्य होते हैं। जब यह समिति इन ख़र्चों

को स्वीकार कर लेती है तो इन के अंक आय-व्यय-अनुमान-पत्र की संशोधित प्रति में सम्मिलित किये जाने के लिए एकाउंटेंट-जनरल के पास भेजे जाते हैं।

यही कार्य-पद्धति केन्द्रीय सरकार के आय-व्यय-अनुमान-पत्र की तैयारी में व्यवहृत होती है। प्रान्तीय सरकारों तथा केन्द्रीय सरकार का बजट सम्बन्धी यह कार्य लगभग दिसम्बर के अन्त में हो जाता है।

अब बजट सरकार के सामने पेश होता है। अगर आय कम हो तो कर बढ़ाने के नये उपाय सोचे जाते हैं। इन उपायों को बिल्कुल गुप्त रखा जाता है। विचार होने के बाद बजट की नयी संशोधित प्रति लगभग फ़रवरी के आरम्भ में तैयार हो जाती है। तदन्तर बजट व्यवस्थापक मंडल में पेश होता है। इस में नये और पुराने सब कर रहते हैं। अर्थ-सदस्य भाषण देकर तमाम बजट को समझाता है, और आवश्यकतानुसार नये करों को लगाने तथा पुराने करों को हटाने का औचित्य भी बतलाता है।

केन्द्रीय बजट, केन्द्रीय व्यवस्थापक मंडल में, तथा प्रान्तीय बजट सम्बन्धित प्रान्त के व्यवस्थापक मंडल में फ़रवरी के अन्तिम, या मार्च के प्रथम सप्ताह में उपस्थित किये जाते हैं। केन्द्रीय सरकार का रेलवे बजट लगभग २० फ़रवरी को अलग पेश किया जाता है।

भारतीय व्यवस्थापक मंडल—भारतीय राजस्व सम्बन्धी व्यवस्था के विवेचन में यह भी जान लेना आवश्यक है कि भारतीय और प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडलों का संगठन किस प्रकार है। इस विषय का सविस्तर वर्णन लेखक की 'भारतीय शासन'-नामक पुस्तक में किया गया है। संक्षेप में यह कहना पर्याप्त होगा कि गवर्नर-जनरल के अतिरिक्त, भारतीय व्यवस्थापक मंडल में दो भाग हैं—

१—राज्य-परिषद्, 'अर्थात् कौंसिल आव् स्टेट'।

२—भारतीय व्यवस्थापक सभा, अर्थात् 'लेजिस्लेटिव एसेम्बली'।

राज्य-परिषद् में ६० सदस्य होते हैं, जिनमें ३३ निर्वाचित और २७ नामज़द होते हैं। व्यवस्थापक सभा में सदस्यों की संख्या १४० निश्चित की गयी है, जिनमें ४० नामज़द होने चाहिएँ। इस समय इस सभा में १०३ निर्वाचित और ४१ नामज़द, कुल १४४ सदस्य हैं। सिवाय कुछ खास हालतों के, कोई क़ानून अब पास हुआ नहीं समझा जाता, जब तक दोनों सभाएँ उसे मूल-रूप में अथवा कुछ संशोधनों सहित स्वीकार न कर लें। यह व्यवस्था उस समय तक के लिए है, जब तक १९३५ के विधान के अनुसार संघ का निर्म्माण न हो।⊛

⊛ संघ का निर्माण हो जाने, और संघ शासन स्थापित हो जाने पर केन्द्रीय व्यवस्थापक मण्डल का कैसा संगठन होगा, और राजस्व की व्यवस्था कैसी होगी, यह अगले परिशिष्ट में बताया जायगा।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल—सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार अब ११ प्रान्तों में व्यवस्थापक-सभाएँ हैं। इनमें सब सदस्य निर्वाचित ही होते हैं (नामज़द सदस्य नहीं होते)। परन्तु इन में साम्प्रदायिकता के आधार पर चुने हुए सदस्य ही अधिक रहते हैं। भिन्न-भिन्न प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं में कुल सदस्यों की संख्या इस प्रकार है:—मदरास २१५; बम्बई १७५; बंगाल २५०; संयुक्त प्रान्त २२८; पंजाब १७५; बिहार १५२; मध्यप्रान्त-बरार ११२; आसाम १०८; पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ५०; उड़ीसा ६०; सिंध ६०।

भारतवर्ष में संयुक्त-निर्वाचन-प्रथा न हो कर पृथक्-निर्वाचन-पद्धति प्रचलित है। उसके अनुसार यहाँ १५ प्रकार के निर्वाचक-संघ हैं—साधारण; सिख; मुसलिम; ऐंग्लो-इंडियन; योरपियन; भारतीय ईसाई; व्यापार, उद्योग, और खनिज; ज़मींदार; विश्व-विद्यालय; श्रम; स्त्रियाँ (साधारण); स्त्रियाँ (मुसलमान); स्त्रियाँ (ऐंग्लो-इंडियन); स्त्रियाँ (भारतीय ईसाई)।

पहले सब गवर्नरों के प्रान्तों में एक-एक ही व्यवस्थापक-सभा थी। अब सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार ६ प्रान्तों में दूसरी सभा अर्थात् व्यवस्थापक परिषदें हैं। इनके कुल, अधिक से अधिक, सदस्यों की संख्या इस प्रकार है—मदरास ५६; बम्बई ३०; बंगाल ६५; संयुक्तप्रान्त ६०; बिहार ३०; आसाम २२।

ये परिषदें स्थायी संस्थाएँ हैं, प्रथम संगठन के बाद किसी भी समय इनके नये सदस्यों की संख्या एक-तिहाई से अधिक नहीं होती। प्रत्येक परिषद् में कुछ सदस्य गवर्नर द्वारा नामज़द होते हैं। बंगाल और बिहार की व्यवस्थापक परिषदों में क्रमशः २७ और १२ सदस्य इन प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं द्वारा—अप्रत्यक्ष रीति से—चुने हुए होते हैं।

भारतीय व्यवस्थापक सभा में व्यय की स्वीकृति—बजट नियमानुसार पेश किये जाने के दिन, उसकी प्रति व्यवस्थापक मंडल के प्रत्येक सदस्य की मेज़ पर रख दी जाती है। सदस्य भिन्न-भिन्न खर्चों का विचार करते हैं। यदि उन्हें किसी मद्द के खर्च में कुछ कमी की सूचना देनी हो तो वे उस सूचना को सेक्रेटरी के पास भेज देते हैं। बजट काफ़ी बड़ा होता है, वह सभा में पढ़ा नहीं जाता। उसे उपस्थित करते समय अर्थ-मंत्री उसके सम्बन्ध में भाषण करता है। वह नयी रक़मों को समझाता है। दो-तीन दिन के बाद बजट पर साधारण बहस शुरू होती है। इन दिनों में सदस्य बजट के समष्टि-रूप पर अपनी सम्मति दे देते हैं। अन्त में अर्थ-सदस्य आलोचनाओं का जवाब देकर बहस समाप्त करता है। इससे उसे व्यवस्थापक मंडल का रुख़ मालूम हो जाता है। अब बजट पर मत देने की बात आती है। कई विषय ऐसे होते हैं, जिन पर मत लिये जाने का नियम नहीं है। शेष विषयों पर प्रायः एक सप्ताह तक मत लिये जाते हैं।

निम्नलिखित विभागों में रुपया लगाने के विषय में कौन्सिल-

युक्त गवर्नर-जनरल के प्रस्ताव व्यवस्थापक-सभा के वोट (मत) के लिए नहीं रखे जाते, न कोई सभा उन पर वाद-विवाद कर सकती है, जब तक गवर्नर-जनरल इसके लिए आज्ञा न दे :—

१—ऋण का सूद।

२—ऐसा खर्च, जिसकी रक़म कानून से निर्धारित हो।

३—उन लोगों की पेंशन या तनख्वाहें, जो सम्राट् या भारत-मंत्री द्वारा, या सम्राट् की स्वीकृति से नियुक्त किये गये हों। चीफ़ कमिश्नरों या जुडिशल कमिश्नरों का वेतन।

४—वह रक़म जो सम्राट् को देशी राज्यों सम्बन्धी कार्य के खर्च के उपलक्ष्य में दी जाती हो।

५—किसी प्रान्त के पृथक् किए हुए ('एक्सक्लयूडेड') क्षेत्रों की शासन-सम्बन्धी सहायता।

६—ऐसी रक़म जो गवर्नर-जनरल उन कार्यों में खर्च करे, जिन्हें उसको अपनी मर्ज़ी से करना आवश्यक हो।

७—वह खर्च जिसे कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल ने (क) धार्मिक (ख) राजनैतिक या (ग) रक्षा अर्थात् सेना सम्बन्धी ठहराया हो।

इन मदों को छोड़ कर व्यय के अन्य प्रस्ताव सम्बन्धित सरकारी सदस्य द्वारा भारतीय व्यवस्थापक सभा के मत के वास्ते, माँग के स्वरूप में, रखे जाते हैं। उसके सदस्यों को अधिकार है

कि वह किसी माँग को घटाने का प्रस्ताव करें। कोई सदस्य किसी मद्द के ख़र्च को बढ़ाने का प्रस्ताव नहीं कर सकता, क्योंकि ख़र्च करने वाले अधिकारी ही इस बात का अच्छी तरह निर्णय कर सकते हैं किसी मद्द में अधिक से अधिक कितना ख़र्च किया जाना उचित है। जब किसी मद्द में केवल एक रुपया कम करने का प्रस्ताव किया जाता है तो इसे सांकेतिक कमी ('टोकेन कट') कहते हैं। इसका अभिप्राय: उस विभाग की कार्य-प्रणाली के सम्बन्ध में निन्दात्मक प्रस्ताव करना होता है, अथवा यह भी हो सकता है कि उस मद्द में ख़र्च बहुत कम है।

बजट-अधिवेशन में पहले किसी विभाग की आलोचना या निन्दा करने के उद्देश्य से प्रस्तुत की हुई सांकेतिक कटौतियों पर विचार होता है। पश्चात् अन्य कटौतियों का विचार होकर एक-एक मद्द के ख़र्च की मांग की जाती है। बजट की बहस के लिए निश्चित किये हुए सप्ताह के अन्तिम दिन के पाँच बजे, कटौतियों की समाप्ति (गिलोटिन) हो जाती है। इसके बाद किसी कटौती पर बहस नहीं होती। सदस्य के आग्रह पर, कटौती की रक़म पर मत लिये जाते हैं, और यदि वह स्वीकार हो जाय तो उस मद्द की रक़म को उसमें आवश्यक कमी कर के मंजूर किया जाता है। इस प्रकार सारा शेष कार्य थोड़ी देर में ही निपटा लेने का नियम है। इस लिए मद्दों का क्रम निश्चय करने में इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि ख़ास-ख़ास विषयों का विचार आरम्भ में ही हो सके।

बजट राज्य-परिषद् में भी पेश होता है, पर उसे घटाने या किसी माँग को अस्वीकार करने आदि का अधिकार केवल भारतीय व्यवस्थापक सभा को है। राज्य-परिषद अपने प्रस्ताव आदि से, सरकार की आर्थिक नीति या साधनों की आलोचना कर सकती है।

प्रान्तीय व्यवस्थापक मण्डलों में व्यय की स्वीकृति— प्रान्तीय बजट का प्रश्न केवल गवर्नरों के प्रान्तों में ही रहता है (अन्य अर्थात् चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों सम्बन्धी ख़र्च तथा आय का केन्द्रीय बजट में समावेश हो जाता है)। किसी प्रान्त का बजट वहाँ की प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा में (और जिस प्रान्त में व्यवस्थापक-परिषद् हो, उस प्रान्त में व्यवस्थापक-परिषद् में भी) उपस्थित किया जाता है। बजट में दो प्रकार की मद्दों की रकमें पृथक्-पृथक् दिखायी जाती हैं—

(१) जिन पर प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा का मत लिया जाता है, और

(२) जिन पर मत नहीं लिया जाता।

व्यय की निम्नलिखित मद्दों पर प्रान्तीय व्यावस्थापक सभा को मत देने का अधिकार नहीं हैं :—

(क) गवर्नर का वेतन और भत्ता, तथा उस के कार्यालय सम्बन्धी निर्धारित व्यय।

(ख) प्रान्तीय ऋण सम्बन्धी व्यय, सूद आदि।

(ग) मन्त्रियों और ऐडवोकेट-जनरल का वेतन और भत्ता।

(घ) हाईकोर्ट के जजों का वेतन और भत्ता।

(च) पृथक् क्षेत्रों के शासन सम्बन्धी व्यय।

(छ) अदालती निर्णयों के अनुसार होने वाला व्यय।

(ज) अन्य व्यय जो नवीन शाधन-विधान या किसी प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल के कानून के अनुसार किया जाना आवश्यक हो। [भारत-मन्त्री द्वारा नियुक्त, इण्डियन-सिविल-सर्विस आदि के कर्मचारियों के वेतन और भत्ते आदि।]

कोई प्रस्तावित व्यय उक्त मद्दों में से किसी में आता है या नहीं, इस का निर्णय गवर्नर अपनी मर्ज़ी से करता है। (क) को छोड़ कर शेष मद्दों पर व्यवस्थापक-मण्डल में वादानुवाद हो सकता है। उपर्युक्त (क) से (ज) तक की मद्दों को छोड़ कर अन्य मद्दों के खर्च के प्रस्ताव व्यवस्थापक-सभा के सदस्यों के मत के लिए माँग के रूप में रखे जाते हैं। इन पर उसी प्रकार की कार्यवाही होती है जैसी केंद्रीय बजट के सम्बन्ध में पहले बता आए हैं।

आय-सम्बन्धी प्रस्तावों पर विचार—कर सम्बन्धी बातें प्रस्तावों के रूप में तैयार की जाती हैं। इसे कर सम्बन्धी प्रस्ताव-पत्र ('फ़ाइनैंस बिल') कहते हैं। निम्नलिखित प्रकार के संशोधन

का प्रस्ताव केन्द्र में गवर्नर-जनरल, और प्रान्तों में गवर्नर की सिफ़ारिश के बिना नहीं किया जाता—

(क) जिस में कर लगाने या बढ़ाने की व्यवस्था हो।

(ख) जिस में सरकार द्वारा रुपया उधार लेने की व्यवस्था हो।

केंद्रीय कर सम्बन्धी प्रस्ताव-पत्र स्वीकार करने के लिए निम्न-लिखित कार्यवाही की जाती है। पहले इसे उपस्थित करने के लिए भारतीय व्यवस्थापक सभा की अनुमति ली जाती है। यदि भारतीय व्यवस्थापक सभा इसे इस पहली मञ्ज़िल में ही रद्द कर दे तो गवर्नर-जनरल यह तसदीक़ करता है कि देश की शान्ति और सुव्यवस्था के लिए इस का उपस्थित किया जाना आवश्यक है। पहले कहा जा चुका है कि राज्य-परिषद् को ख़र्च-सम्बन्धी माँगों पर मत देने का अधिकार नहीं है; परन्तु उसे कर-सम्बन्धी प्रस्ताव पर मत देने का अधिकार है। जब भारतीय व्यवस्थापक-सभा इस प्रस्ताव को पहली मंज़िल में ही रद्द कर देती है तो राज्य-परिषद् से इसे उपस्थित किये जाने की अनुमति माँगी जाती है; वह तो दे ही देती है।

कर-सम्बन्धी प्रस्ताव-पत्र उपस्थित किये जाने की अनुमति मिल जाने के बाद वह भारतीय व्यवस्थापक सभा में पेश होता है, उस की एक-एक धारा या अंश पर बहस होती है, और

उसे पृथक्-पृथक् स्वीकार किया जाता है। कोई सदस्य किसी कर की वृद्धि का प्रस्ताव नहीं कर सकता; हाँ, वह उसे घटाने का प्रस्ताव कर सकता है। जब उक्त प्रस्ताव के विविध अंशों पर विचार तथा संशोधन आदि हो चुकता है तो इकट्ठे पूर्ण प्रस्ताव को स्वीकार किया जाता है। भारतीय व्यवस्थापक सभा में स्वीकार किये जाने के बाद संशोधित कर-सम्बन्धी प्रस्ताव-पत्र को राज्य-परिषद् में भेजा जाता है, वहाँ उस पर उसी प्रकार की कार्यवाही होती है जैसी भारतीय व्यवस्थापक सभा में। संशोधित प्रस्ताव-पत्र पर मत लिये जा कर उसे स्वीकार किया जाता है। फिर यह गवर्नर-जनरल की स्वीकृति के लिए भेजा जाता है। उस की स्वीकृति मिल जाने पर वह क़ानून बन जाता है और उस के अनुसार कर वसूल किये जाते हैं।

तत्पश्चात् यदि वर्ष के अन्तर्गत सरकार को यह ज्ञात हो कि उक्त करों से उस का ख़र्च नहीं चल सकता तो वह कर सम्बन्धी पूरक प्रस्ताव सितम्बर या अक्टूबर में उपस्थित कर सकती है।

किसी प्रान्त के कर सम्बन्धी प्रस्ताव-पत्र के विषय में उस प्रान्त के गवर्नर को वैसा ही अधिकार है जैसा केंद्र में गवर्नर-जनरल को।

गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के अधिकार--भारतवर्ष

में केंद्रीय बजट के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल को तथा प्रान्तीय बजटों के सम्वन्ध में गवर्नरों को बहुत अधिकार प्राप्त हैं। प्रथम वो उन की सिफ़ारिश के बिना, क्रमशः केंद्र में, तथा प्रान्तों में किसी काम के लिए रुपये की माँग का प्रस्ताव ही नहीं किया जा सकता। पुनः यदि भारतीय व्यवस्थापक सभा किसी मद्द की माँग स्वीकार न करे या घटा कर स्वीकार करे, और इस से ग़वर्नर-जनरल की सम्मति में उस के उत्तरदायित्व को पूरा करने में बाधा उपस्थित हो या उक्त ख़र्च देश की शांति और सुव्यवस्था के लिए आवश्यक हो तो वह अपने विशेषाधिकार से, रद्द की हुई या घटाई हुई माँग की पूर्त्ति कर सकता है। इसी प्रकार का अधिकार प्रान्तों में गवर्नरों को है। यह तो व्यय-सम्बन्धी बात हुई। आय के विषय में भी ऐसी ही व्यवस्था है। भारतीय व्यवस्थापक सभा या प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा में कर लगाने या बढ़ाने का कोई प्रस्ताव या संशोधन क्रमशः गवर्नर-जनरल और गवर्नर की सिफ़ारिश बिना उपस्थित नहीं किया जा सकता। और, उक्त सभाओं में कर सम्बन्धी कोई प्रस्ताव अस्वीकृत होने पर भी उक्त अधिकारी आवश्यक समझें तो उसे अपने विशेषाधिकार से स्वीकार कर सकते हैं।

व्यय तथा आय के सम्बन्ध में, गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के इन अधिकारों के होते हुए, वास्तव में भारतीय व्यवस्थापक मंडल तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक-मंडलों का विशेष महत्व नहीं रहता।

आय-व्यय-सम्बन्धी कार्य यथा-समय समाप्त करने के सम्बन्ध में भारतीय व्यवस्थापक सभा के नियम गवर्नर जनरल, इस सभा के सभापति के परामर्श से, और राज्य-परिषद के नियम उस सभा के सभापति के परामर्श से, बनाता है। इसी प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा और व्यवस्थापक परिषद के नियम गवर्नर बनाता है।

आय के साधनों का केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों में विभाजन; नवीन विधान के अनुसार--सन् १९३५ ई० के विधान से यह व्यवस्था की गयी है कि केन्द्रीय सरकार (संघ सरकार) की आय साधन निम्न-लिखित रहें:—आयात-निर्यात-कर, अफ़ीम, पेट्रोलियम, तम्बाकू, और अन्य देशी माल पर कर, नमक, आय-कर, डाक, तार, बेतार का तार, ध्वनि-विस्तार, (ब्राडकास्टिंग), कारपोरेशन-कर। इन करों को केन्द्रीय सरकार लगाएगी, तथा वसूल करेगी।

प्रान्तीय सरकारों की आय के वे साधन जिन्हें वे स्वयं वसूल करती हैं, निम्न-लिखित हैं:—भूमि-कर, मालगुज़ारी, कृषि-भूमि पर उत्तराधिकार-कर, विलासिता (जुआ, सट्टा आदि)-कर, आबकारी, अदालतों की फ़ीस, जंगल, आबपाशी, नदियों या नहरों के रास्ते जाने वाले यात्रियों तथा सामान पर कर। इनके अतिरिक्त प्रान्तीय आय के निम्न-लिखित साधन और भी हैं:— कृषि-भूमि को छोड़ कर, अन्य सम्पत्ति पर उत्तराधिकार-कर, ग़ैर-

अदालती स्टाम्प, रेल या वायुयान से जाने वाले यात्रियों तथा सामान पर 'टरमिनल टैक्स' और रेल के किराये-भाड़े पर कर। इन करों की आय को (चीफ़ कमिश्नरों वाले प्रान्तों से मिलने वाले भाग को छोड़ कर शेष) विविध प्रान्तों में विभक्त करने का कार्य केन्द्रीय सरकार का है। केन्द्रीय सरकार को आवश्यकता हो तो वह इन मद्दों पर अतिरिक्त कर लगा कर इन करों से होने वाली अतिरिक्त आय स्वयं अपने लिए ले सकती है।

सर आटो निमेयर की रिपोर्ट के आधार पर निश्चय किया गया कि जूट के निर्यात-कर का ६२½ प्रतिशत भाग उन प्रान्तों को दिया जाय, जहां जूट पैदा होता है। आय-कर का ५० प्रतिशत भाग प्रान्तों में नीचे लिखे प्रतिशत के अनुसार ५ वर्ष बाद उस समय से विभाजित किया जाय, जब रेल से काफी आमदनी होने लगे—

बम्बई १०; बंगाल १०; मदरास ७½; संयुक्त प्रान्त ७½; बिहार ५; पंजाब ४; मध्यप्रान्त २½; आसाम १; उड़ीसा १; सिंध १; पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ½ फी सदी।

बंगाल, बिहार, आसाम, उड़ीसा, और पश्चिमोत्तर प्रान्त को भारत सरकार का जो क़र्ज़ ३१ मार्च सन् १९३६ तक देना था, वह मंसूख़ कर दिया गया, और इसी प्रकार मध्य प्रान्त का ३१ मार्च सन् १९३६ तक का बजट-क्षति-पूर्ति का क़र्ज़, तथा सुधार के पहिले का २ करोड़ रुपयों का क़र्ज़ मंसूख़ कर दिया गया।

केंद्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों को १ अप्रैल सन् १९३७ से नीचे लिखे अनुसार आर्थिक सहायता देगी—

संयुक्त प्रान्त—२५ लाख रुपये प्रति वर्ष, पांच वर्ष के लिए।

आसाम—३० लाख रुपये प्रति वर्ष।

पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त—१ करोड़ प्रति वर्ष; पांच वर्ष के बाद इस पर पुनर्विचार होगा।

उड़ीसा—प्रथम वर्ष ४७ लाख, उस के बाद चार वर्ष तक ४३ लाख प्रति वर्ष, और उस के बाद ४० लाख प्रति वर्ष।

सिंध—प्रथम वर्ष १ करोड़ १० लाख; पश्चात् १ करोड़ ५ लाख प्रति वर्ष, दस वर्ष तक।

उपर्युक्त व्यवस्था के अनुसार प्रान्तों की अवस्था सुधरने की आशा नहीं है। पहले की भाँति उनकी आय के साधन परिमित हैं, और उनकी शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा, बड़ी सड़कें बनाने, तथा कृषि और उद्योग-धन्धों की उन्नति करने आदि की आवश्यकताएँ बहुत हैं। जब तक कि शासन-व्यय बढ़ा हुआ है (नवीन विधान से यह और भी बढ़ेगा), प्रान्तीय सरकारों को पूर्वोक्त जन-हितकारी कार्यों के लिए यथेष्ठ द्रव्य का अभाव ही रहेगा। यदि उन्हें आय-कर की पूरी रक़म मिल जाती तो वे कुछ स्वावलम्बी हो सकती थीं; परन्तु विधान के अनुसार उन्हें केवल आधी मिलेगी, और वह भी पाँच वर्ष बाद, तथा रेल से काफ़ी आमदनी होने पर, जो कि संदिग्ध ही है। वर्तमान अवस्था में यदि प्रान्तीय सरकारें जन-हितकारी कार्य कुछ विशेष-रूप से करना चाहेंगी तो मंत्रियों को जनता पर कर-भार और भी बढ़ाना पड़ेगा।

राजस्व-विभाग—भारतीय राजस्व-विभाग का अध्यक्ष भारत-सरकार का अर्थ सदस्य (फाइनेंस मेम्बर) होता है। यह

विभाग भारत-सरकार का बजट बनाता और प्रान्तीय सरकारों के आय-व्यय का निरीक्षण करता है। यही सरकारी अफ़सरों का वेतन, उनकी छुट्टी, पेंशन, भत्ता और पुरष्कार आदि विपयों से सम्बन्ध रखने वाले प्रश्नों पर विचार करता है। इस की एक शाखा सैनिक व्यय की व्यवस्था करती है। राजस्व-विभाग में अर्थ-सदस्य के अतिरिक्त निम्न-लिखित पदाधिकारी होते हैं :—सेक्रेटरी, डिप्टी-सेक्रेटरी, अंडर-सेक्रेटरी, एसिस्टेंट सेक्रेटरी, रजिस्ट्रार, सुपरिन्टेन्डेन्ट और बहुत से क्लर्क।

साधारण विषय का कार्य उस का सुपरिन्टेन्डेन्ट अपनी ज़िम्मेदारी पर कर सकता है। ख़ास विषयों के कागज़ वह सेक्रेटरी की सिफ़ारिश से, अर्थ-सदस्य की अनुमति के लिए रखता है। सेक्रेटरी इस बात का ध्यान रखता है कि कार्य-सञ्चालन के नियमों का यथावत् ध्यान रखा गया है या नहीं। वह भारत-सरकार का सेक्रटरी होता है, और गवर्नर-जनरल से मिलता रहता है। जिन कागज़ों के सम्बन्ध में अर्थ-सदस्य और सेक्रेटरी में मतभेद होता है वे ही गवर्नर-जनरल के सामने रखे जाते हैं।

इसी प्रकार प्रान्तीय राजस्व-विभागों का संगठन और कार्य होता है।

अन्य विचारणीय बातें—कभी-कभी सरकार के अधिकार में कुछ रक़म रिज़र्व-फ़ंड के रूप में छोड़ दी जाती है, जिसे

वह आकस्मिक आवश्यकता पड़ने पर ख़र्च कर सके। इस रक़म का हिसाब अगले साल के बजट में दिखाया जाता है। ऐसी प्रथा आपत्ति-जनक नहीं है; रक़म कम ही रखी जाती है।

यदि किसी अकल्पित घटना के कारण सरकार को व्यय के लिए निर्धारित रक़म से अधिक की आवश्यकता हो तो गवर्नर-जनरल भारतीय व्यवस्थापक मण्डल के सामने उस अधिक ख़र्च को सूचित करने वाला पूरक नक़शा उपस्थित कराता है। उस के सम्बन्ध में विविध नियम उसी प्रकार लागू होते हैं, जैसे वार्षिक आय-व्यय-अनुमान-पत्र के सम्बन्ध में होते हैं।

पूरक बजट की भांति असाधारण बजट की प्रथा भी विचारणीय है। कभी-कभी जिस व्यय को आमदनी से चुकाना चाहिए, उसे वैसा न कर, जनता से विशेष धन वसूल कर के चुकाने का प्रयत्न किया जाता है, और उस का हिसाब साधारण बजट से अलग रखा जाता है। जब तक कि विशेष कारण न हो, ऐसा करना ठीक नहीं है।

ख़र्च करने का ढङ्ग--सरकार के विविध विभाग हैं, प्रत्येक विभाग में कई प्रकार के ख़र्च होते हैं, यथा कर्मचारियों का वेतन, आफ़िस-व्यय, पुरस्कार, भत्ता आदि। किसी कार्य में निर्धारित से अधिक ख़र्च न किया जाय, इस का ध्यान रक्खा जाता है। जिस कार्य के लिए जितना रुपया दिया जाता है, उस का ठीक-ठीक

हिसाब रखा जाता है, और उस की रसीद रखने की भी व्यवस्था की जाती है, जिस से कोई आदमी हिसाब में गड़बड़ न कर सके। अधिकतर खर्च करने का काम 'इम्पीरियल बैङ्क' द्वारा होता है।

आय वसूल करने की पद्धति—ब्रिटिश भारत यद्यपि ज़िलों में, शासन की दृष्टि से. विभक्त है, वास्तव में ये भाग आय की दृष्टि से किये गये हैं। ज़िले के मुख्य अधिकारी को बहुत से स्थानों में 'कलेक्टर' कहा जाता है; कलेक्टर का अर्थ है, वसूल करने वाला। ज़िला-मजिस्ट्रेट अपने ज़िले की मालगुज़ारी वसूल करने का उत्तरदायी होने से 'कलेक्टर' कहलाता है। उस के अधीन कई तहसीलदार होते हैं जो एक-एक तहसील के किसानों से, नम्बरदारों और पटवारियों की सहायता से मालगुज़ारी और आबपाशी की रकमें वसूल करते हैं। एक तहसील के गाँवों की सब आमदनी तहसील में जमा होती है, वहाँ से वह ज़िले के खज़ाने में भेजी जाती है। ज़िले के खज़ाने में मालगुज़ारी और आबपाशी की आय के अतिरिक्त, अन्य भिन्न-भिन्न सरकारी महों की आय का भी हिसाब रहता है, परन्तु अब अधिकांश ज़िलों में 'इम्पीरियल बैङ्क' की शाखाएँ होने से ज़िले के खज़ाने में उक्त आय का रुपया जमा नहीं किया जाता; सब रुपया इस बैंक में ही जमा होता रहता है।

हिसाब और उस की जाँच—प्रत्येक विभाग का हिसाब ठीक-ठीक रखने, और समय-समय पर उस की भिन्न-भिन्न

शाखाओं और उप-शाखाओं के हिसाब की परीक्षा किये जाने का नियम है। इस काम के लिए योग्य व्यक्ति नियुक्त रहते हैं। समस्त देश का मुल्की हिसाब-विभाग रहता है। इस का प्रधान, एकाउंटैंट और आडीटर-जनरल होता है। प्रान्तीय सरकारों का हिसाब प्रान्तीय एकाउंटैंट-जनरल रखते हैं। हर एक ज़िले के प्रधान स्थान में कोष रहता है, इस में सरकारी आय एकत्र होती है और इस से स्थानीय ख़र्च की रक़म दी जाती है। एकाउंटैंट और आडीटर-जनरल का 'स्टाफ़' इन कोषों का निरीक्षण करता है। भिन्न-भिन्न विभागों के आडीटर (लेखा-परीक्षक) हिसाब की जाँच करते हैं और उस में जो भूलें होती हैं, उन की तरफ़ अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करते हैं। उदाहरण के लिए राज्य के रुपयों में से किसी व्यक्ति-विशेष के लिए तो कुछ ख़र्च नहीं किया गया है; जो व्यय हुआ है, वह नियम के अनुसार हुआ है या नहीं; किस की आज्ञा से हुआ है; कम या अधिक तो ख़र्च नहीं हुआ; उस की रसीदें ठीक-ठीक रखी गयी हैं या नहीं; इसी प्रकार जो आय हुई है, उस की रकमें, हिसाब में, ठीक-ठीक दिखायी गयी हैं या नहीं; इस बात की जाँच की जाती है।

आडीटरों की रिपोर्ट से बड़ा लाभ होता है; भविष्य में वैसी त्रुटियाँ फिर न हों, इस की व्यवस्था की जाती है। कहना नहीं होगा कि हिसाब और उस की जाँच वाले अधिकारी अलग-अलग होने चाहिएँ।

राजस्व-नियंत्रण; पार्लिमेंट का सम्बन्ध— भारत-मंत्री भारतीय विषयों में जो अधिकार रखता है, वह पार्लिमेंट के नाम से रखता है, और अपने सब कामों के लिए उसके प्रति उत्तरदायी है। वह उसके सम्मुख प्रति वर्ष मई महीने की दूसरी से पन्द्रहवीं तारीख तक भारतवर्ष के आय-व्यय का हिसाब पेश करता है और इस बात की सविस्तर रिपोर्ट देता है कि गत वर्ष भारत के विविध प्रान्तों ने कितनी नैतिक या भौतिक उन्नति की है, तथा उनकी क्या दशा है।

हिसाब की देख-भाल के लिए ब्रिटिश प्रतिनिधि-सभा (हाउस आव् कामन्स) की एक समिति बनती है। इस अवसर पर कभी-कभी भारतवर्ष की राजनैतिक या आर्थिक स्थिति की विवेचना होती है, और जो नीति काम में लायी गयी हो, अथवा लायी जाने वाली हो, बतलायी जाती है। जो सदस्य भारतीय विषयों में अनुराग रखते हैं, वे सरकार के कामों की आलोचना करते हैं, और सुधारों की माँग पेश करते हैं। इसे बजट की बहस कहते हैं। कमेटी का प्रस्ताव केवल रीति-पालन के लिए होता है, और बहुधा तमाम कार्रवाई शुरू से आखिर तक बड़ी नीरस रहती है। सिद्धान्त से पार्लिमेंट, भारतीय विषयों पर भारत-मंत्री द्वारा पूर्ण नियंत्रण करती है। परन्तु वास्तव में उसका कार्य-भार इतना बढ़ा हुआ है, और उसे इंगलैंड से घनिष्ट सम्बन्ध रखने वाले विभागों की इतनी चिन्ता रहती है कि वह भारतीय विषयों पर बहुत ही कम ध्यान दे सकती है। सन् १९१९ ई० से भारत-मंत्री

का वेतन ब्रिटिश कोष से मिलता है, अतः ब्रिटिश सरकार के आय-व्यय-सम्बन्धी वाद-विवाद में भारतीय विषयों की कुछ चर्चा होती है, परन्तु वह पर्याप्त नहीं। पार्लिमेंट में ऐसे सदस्य बहुत कम होते हैं, जिन्हें भारतीय विषयों का यथेष्ठ ज्ञान हो; जो होते हैं, उनमें से—कुछ थोड़े-से प्रशंसनीय अपवादों को छोड़ कर—अधिकांश भारतीय हित की दृष्टि से विचार नहीं करते, अपने देश के स्वार्थ-साधन में लगे रहते हैं। सन् १९१९ ई० से प्रति वर्ष भारतीय विषयों पर विचार करने के लिए पार्लिमेंट की एक सिलेक्ट कमेटी बनायी जाती है, पर उस में भारतीय सदस्य यथेष्ठ नहीं होते, और ब्रिटिश प्रतिनिधि-सभा के तो छः सौ से अधिक सदस्यों में, कभी-कभी एक-दो ही सदस्य भारतीय होते हैं। इससे स्पष्ट है कि पार्लिमेंट के नियंत्रण में भारतीय दृष्टि-कोण का विचार कैसा नगण्य होता है।

भारत-मंत्री का अधिकार—भारतीय आय-व्यय पर पूर्ण और अन्तिम नियंत्रण ब्रिटिश पार्लिमेंट का है। वह यह नियंत्रण भारत-मंत्री द्वारा करती है। यह पार्लिमेंट का एवं ब्रिटिश मंत्री-मंडल का सदस्य होता है। इसके कार्यालय को 'इंडिया आफ़िस' और इस की सभा को 'इंडिया कौंसिल'※ कहते हैं। इंडिया-कौंसिल में ८ से १२ तक सदस्य रहते हैं और उसका

※ भारतीय-संघ की स्थापना के बाद यह सभा नहीं रहेगी। हाँ, भारत मंत्री के कुछ परामर्श-दाता रहा करेंगे।

अधिवेशन प्रतिमास एक बार होता है; उस में सभापति भारत-मंत्री या उसका नियुक्त किया हुआ कोई कौंसिल का सदस्य होता है। इस कौंसिल के बहुमत बिना भारत-मंत्री (१) भारतवर्ष की आमदनी ख़र्च नहीं कर सकता, (२) ऋण वा ठेका नहीं दे सकता और (३) किसी महत्वपूर्ण पद पर किसी कर्मचारी की नियुक्ति नहीं कर सकता।

कौंसिल में दो सदस्य ऐसे होते हैं, जो राजस्व-सम्बन्धी ज्ञान के कारण ही लिये जाते हैं। ये सदस्य प्रायः लन्दन के सर्राफ़े से व्यक्तिगत सम्बन्ध रखते हैं। इस लिए कौंसिल पर, और कौंसिल द्वारा भारतीय राजस्व पर, लन्दन के सर्राफ़े का प्रभाव पड़ता है; यह अनुचित है। कौंसिल के हिसाब की जाँच एक निरीक्षक द्वारा की जाती है। राजस्व-विभाग के लिए एक 'राजस्व-समिति' नियत है। नियम के अनुसार, यह समिति भारतीय राजस्व-सम्बन्धी सर्वोच्च संस्था है।

हाई कमिश्नर—सन् १९१९ ई० से भारतवर्ष के लिए इंगलैंड में एक हाई कमिश्नर की नियुक्ति होती है। इस पदाधिकारी को उन विषयों में से कुछ सौंपे जाते हैं जो पहले भारत-मंत्री के अधीन थे, जैसे सरकार के लिए किसी माल का ठेका देना, विदेशों में स्टोर, रेलवे का सामान आदि खरीदना। ब्रिटिश उपनिवेशों की सरकारें स्वयं अपना हाई कमिश्नर नियुक्त करती हैं, परन्तु भारत के लिए हाई कमिश्नर की नियुक्ति भारत-सरकार द्वारा न हो कर ब्रिटिश सरकार द्वारा होती है।

भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों के अधिकार—नियम से तो भारतीय राजस्व पर भारत-मंत्री और उसकी कौंसिल का पूर्ण अधिकार है, पर व्यवहार में भारत-सरकार एवं प्रान्तीय सरकारों को अपनी समझ के अनुसार कुछ कार्य करने का अधिकार है। वह निर्धारित सीमा में नया ख़र्च और नवीन पदों की सृष्टि कर सकती हैं। म्युनिसिपैलिटियों, ज़िला-बोर्डों और पोर्ट-ट्रस्टों को राजस्व सम्बन्धी निर्धारित अधिकार मिले हुए हैं।

प्रान्तीय सरकारें और विशेषतया भारत-सरकार अपने आय-व्यय के कार्य में प्रजा-प्रतिनिधियों के प्रति बहुत कम उत्तर-दायी हैं, यह पहले बताया जा चुका है। वास्तव में भारतीय राजस्व-व्यवस्था अत्यन्त पराधीनता-मूलक है।

परिशिष्ट (२)

संघ योजना और राजस्व

"राजस्व वह धुरी है, जिस पर शासन-चक्र घूमता है।"

सन् १९३५ ई० के शासन-विधान का अभी प्रान्तीय शासन सम्बन्धी भाग ही अमल में आया है; केन्द्रीय शासन सम्बन्धी भाग अमल में नहीं आया है। परन्तु उस की भी योजना

बन गयी है, अतः यह जान लेना आवश्यक है कि उस के अनुसार केन्द्रीय शासन और व्यवस्थापक मंडल का स्वरूप क्या होगा, तथा उस अवस्था में केन्द्रीय राजस्व की व्यवस्था कैसी होगी। संघ शासन और संघीय व्यवस्थापक मंडल के सम्बन्ध में विस्तार-पूर्वक हमारी 'भारतीय शासन' में लिखा गया है; यहां कुछ मुख्य-मुख्य बातें ही दी जाती है ;

संघ शासन और संघ सरकार—सन् १९३५ ई० के विधान के अनुसार भारतवर्ष के केन्द्रीय शासन का लक्ष्य संघ-शासन की स्थापना है, जिस से ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों का एक संघ बन कर दोनों का इकट्ठा शासन हो। संघ स्थापित होने पर भारत-सरकार का नाम 'भारतवर्ष की संघ सरकार' होगा। सम्राट का प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत के शासन सम्बन्धी विषयों में गवर्नर-जनरल, और देशी राज्यों के शासन-प्रबन्ध में वायसराय होगा। दोनों पदों पर नियुक्तियां सम्राट् द्वारा हुआ करेंगी, और सम्राट् को दोनों पदों के लिए एक-ही व्यक्ति नियुक्त करने का भी अधिकार होगा।

इस समय जो शासन-कार्य कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल के ही नाम से होता है, वह फिर केवल गवर्नर-जनरल के ही नाम से होगा। उस का एक मंत्री-मंडल (कौंसिल-आफ़-मिनिस्टर्स) होगा। यह मंडल उसे, उसके विशेषाधिकारों को छोड़ कर, अन्य विषयों में सहायता या परामर्श देगा। इस में अधिक से अधिक दस मंत्री होंगे।

देश-रक्षा अर्थात् सेना, धर्म (ईसाई मत), पर-राष्ट्र, तथा जंगली जातियों के विषय के प्रबन्ध में गवर्नर-जनरल अपनी मर्जी के अनुसार कार्य करेगा। इस में मंत्रियों का परामर्श नहीं लिया जायगा। इस के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल को सहायता देने के लिए अधिक-से-अधिक तीन सलाहकार (कौंसिलर) रहेंगे।

अन्यान्य बातों में निम्नलिखित विषयों के लिए गवर्नर-जनरल विशेष रूप से उत्तरदायी होगा; इन के सम्बन्ध में वह (मंत्रियों की सलाह के विरुद्ध भी) अपने व्यक्तिगत निर्णय के अनुसार कार्य कर सकेगा :—(१) संघ-सरकार की आर्थिक स्थिरता और साख को सुरक्षित रखना। [गवर्नर-जनरल को इस कार्य में सहायता देने के लिए एक आर्थिक-परामर्श-दाता (फ़ाइनेन्शल ऐडवाइज़र) होगा। इसकी नियुक्ति, बर्खास्तगी, वेतन, भत्ते आदि के निर्णय का अधिकार गवर्नर-जनरल को ही होगा] (२) ऐसे कार्य को रोकना, जिससे इंगलैंड या बर्मा से भारत में आने वाले माल के सम्बन्ध में भेद-नीति का व्यवहार हो।

संघीय व्यवस्थापक मंडल—संघ का निर्माण हो जाने पर भारतवर्ष के केन्द्रीय क़ानून बनाने वाली संस्था का नाम संघीय व्यवस्थापक मंडल ('फीडरल लेजिस्लेचर') होगा। उसमें दो सभाएँ होंगी, राज्य परिषद ('कौंसिल आफ़-स्टेट') और संघीय व्यवस्थापक सभा ('फीडरल एसेम्बली')। राज्य परिषद में २६० सदस्य होंगे:—१५६ ब्रिटिश भारत के,

[१५० जनता द्वारा निर्वाचित और ६ नामज़द], और १०४ देशी राज्यों के। यह एक स्थायी संस्था होगी; इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति तीसरे वर्ष चुने जाया करेंगे। संघीय व्यवस्थापक सभा में ३७५ सदस्य होंगे, २५० ब्रिटिश भारत के, और १२५ देशी राज्यों के। ब्रिटिश भारत के सदस्यों का चुनाव अप्रत्यक्ष होगा—यह निर्वाचन प्रान्तों की व्यवस्थापक सभाओं (एसेम्बलियों) के सदस्यों द्वारा प्रति पाँचवें वर्ष होगा।

दोनों सभाओं में देशी राज्यों की ओर से लिये जाने वाले सदस्य निर्वाचित न होकर नरेशों द्वारा निर्धारित हिसाब से नियुक्त हुआ करेंगे। निर्धारित नियमों तथा सीमा को ध्यान में रखते हुए संघीय व्यवस्थापक मंडल समस्त ब्रिटिश भारत, या उसके किसी भाग के लिए, या संघ में सम्मिलित देशी राज्यों के लिए क़ानून बना सकेगा। गवर्नर-जनरल चाहे तो वह मंडल में स्वीकृत प्रस्ताव तथा कानून को अस्वीकार कर सकेगा, अथवा उसे सम्राट् की स्वीकृति के लिए रख सकेगा। कुछ दशाओं में वह नये क़ानून भी बना सकेगा।

संघ, प्रान्तों और देशी राज्यों का राजस्व-सम्बन्ध—केन्द्रीय (संघ) सरकार और प्रान्तीय सरकारों की आय के साधन क्या-क्या हैं, यह पिछले अध्याय में बताया जा चुका है। वहाँ इस बात का भी उल्लेख कर दिया गया है कि इस व्यवस्था से प्रान्तीय सरकारों के पास जन-हितकारी कार्यों के लिए धन की जो कमी रहेगी, उसे हटाने के लिए किन-किन उपायों को

काम में लाना आवश्यक है। देशी राज्यों का संघ सरकार से राजस्व-सम्बन्ध कैसा रहेगा, इस विषय का अभी अन्तिम निर्णय नहीं हुआ है।

ऋण-सम्बन्धी व्यवस्था—संघ को, एवं प्रान्तों को अपनी-अपनी आय की जमानत पर ऋण लेने का अधिकार होगा। ऋण उस सीमा तक लिया जायगा जो क्रमशः संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल क़ानून द्वारा निश्चित करें। कोई प्रान्त संघ की स्वीकृति विना भारतवर्ष के बाहर से कोई ऋण नहीं ले सकेगा।*

संघ प्रान्तों को एवं संघान्तरित राज्यों को ऋण दे सकता है, और ज़ामिन होकर दूसरों से भी दिला सकता है; यह ऋण देना या दिलाना उस सीमा तक होगा, जो संघीय व्यवस्थापक मंडल निश्चय करे।

भारतवर्ष के वर्तमान सरकारी ऋण के, इंगलैंड में दिये जाने वाले मूलधन या सूद के सम्बन्ध में, संघीय या प्रान्तीय व्यवस्थापक मंडल को किसी कर की रकम काटने का अधिकार न होगा।*

संघीय व्यवस्थापक मंडल का राजस्व-अधिकार—बजट व्यवस्थापक मण्डल की दोनों सभाओं में उपस्थित किया जायगा। सतरहवें अध्याय ('आर्थिक स्वराज्य') में यह बताया

* ऋण सम्बन्धी आलोचना इस पुस्तक के सोलहवें अध्याय में की जा चुकी है।

जा चुका है कि सन् १९३८-३९ के बजट के अनुसार लगभग ८५ प्रति शत व्यय करने के सम्बन्ध में लोक-प्रतिनिधियों को मत देने का अधिकार नहीं है। संघ स्थापित हो जाने पर इतने व्यय पर तो संघीय व्यवस्थापक मण्डल को मत देने का अधिकार होगा ही नहीं; इसके अतिरिक्त, उस दशा में संघ-न्यायालय, ऐडवोकेट-जनरल, कौन्सिलर, आर्थिक सलाहकार के वेतन भत्ते आदि का खर्च भी करना होगा, जिस पर सदस्यों को मत देने का अधिकार न होगा। इस प्रकार प्रतिशत १५ से भी कम व्यय पर सदस्य अपना मत दे सकेंगे। और, इस व्यय पर भी गवर्नर-जनरल को विशेषाधिकार प्राप्त है।

गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार—(१) खर्च के लिए रुपये की जिस मांग में व्यवस्थापक सभा (एसेम्बली) कुछ कमी कर देगी, वह राज्य परिषद में, घटाये हुए परिमाण में ही उपस्थित की जायगी। परन्तु गवर्नर-जनरल के आज्ञा देने पर वह इस घटाये हुए परिमाण से अधिक परिमाण में (मूल मांग से अधिक परिमाण में नहीं) उपस्थित की जा सकेगी।

(२) व्यवस्थापक सभा द्वारा अस्वीकृत मांग राज्य परिषद में न रखी जायगी, परन्तु गवर्नर-जनरल चाहे तो उसे रखा भी सकता है।

(३) यदि व्यवस्थापक सभा और राज्य परिषद में किसी मांग पर मत-भेद हो तो दोनों सभाओं का संयुक्त अधिवेशन

होगा। इसमें, यह प्राय: निश्चित ही है कि जैसी आर्थिक नीति गवर्नर-जनरल चाहेगा, चल सकेगी।※

(४) यदि दोनों सभाएँ या उन का संयुक्त अधिवेशन भी किसी मांग को अस्वीकार करे तो संघ विधान के अनुसार गवर्नर-जनरल उसे अपने अधिकार से पास कर सकता है; यह पास किया हुआ आँकड़ा उपस्थित होने पर दोनों सभाओं को इस पर मत देने का अधिकार न होगा।

(५) आवश्यकता होने पर गवर्नर-जनरल बजट के अतिरिक्त, सहायक खर्च का आँकड़ा भी उपस्थित कर सकता है। इस पर सभाओं को मत देने का अधिकार न होगा।

(६) गवर्नर-जनरल को अध्यक्ष से सलाह कर के, आर्थिक कार्य को अपनी इच्छानुसार समय के भीतर समाप्त करने के नियम बनाने का अधिकार होगा। इस प्रकार सदस्यों की परिमित बहस भी गवर्नर-जनरल के बनाये नियमों पर निर्भर होगी।

उपसंहार—इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संघ शासन में केन्द्रीय आय-व्यय के सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल को प्राय: पूर्ण

※ संयुक्त अधिवेशन में एसेम्बली के ३७५ और राज्य परिषद के २६०, इस प्रकार कुल ६३५ सदस्य होंगे; इनमें २२६ तो देशी राज्यों के और ६ नामज़द ही होंगे, ये प्राय: गवर्नर-जनरल का समर्थन करने वाले होंगे, यदि इन्हें अपने पक्ष वाले ८३ और मिल जाँय तो ये ३१८ हो जायँगे और बहुमत इनका ही होगा। एसेम्बली और राज्य परिषद का प्रस्तावित संगठन देखते हुए उक्त ८३ सदस्य मिलना कुछ कठिन नहीं है।

अधिकार है, और प्रजा-प्रतिनिधियों को बहुत ही कम। जो थोड़ा-सा अधिकार प्रजा-प्रतिनिधियों को प्राप्त भी है, उस पर भी गवर्नर-जनरल को विशेषाधिकार प्राप्त है। इस प्रकार प्रजा-प्रतिनिधियों का रुपये में दो आने अधिकार भी सुरक्षित रहने का निश्चय नहीं है। ऐसी आर्थिक नीति वाले संघ विधान का भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा सर्वथा बहिष्कार होना स्वाभाविक ही था, और वही हुआ। जब तक इस विधान में मौलिक परिवर्तन न होंगे, भारतीय जनता को आर्थिक स्वराज्य-प्राप्ति स्वप्नवत है, जिस की आवश्यकता हम सतरहवें अध्याय में भली भाँति प्रमाणित कर चुके हैं।

परिशिष्ट (३)

ब्रिटिश भारत का सरकारी आय-व्यय

आगे ब्रिटिश भारत में होने वाले सरकारी आय और व्यय के अंक दिये जाते हैं। स्मरण रहे कि :—

(१) चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों की (प्रान्तीय विषयों की) आय तथा व्यय केंद्रीय सरकार के हिसाब में शामिल किया गया है, कारण, इसका सम्बन्ध केंद्रीय सरकार से ही रहता है।

(२) केन्द्रीय व्यय की मद्दों में, कर वसूल करने के ख़र्च में आयात-निर्यात-कर, आय-कर, अफ़ीम और नमक, आदि विभागों के ख़र्च के अतिरिक्त अफ़ीम और नमक, तैयार करने का ख़र्च भी सम्मिलित है।

(३) हिसाब में विशुद्ध आय-व्यय ही दिखाया गया है। रेल, डाक, तार, नहर आदि व्यवसायिक कार्यों से जो कुल आय होती है, उस में से इन कार्यों के संचालन आदि में ख़र्च होने वाला रुपया निकाल दिया गया है। इसी प्रकार इन मद्दों के व्यय में विविध कर्मचारियों के वेतन आदि का ख़र्च न दिखा कर, केवल इन कार्यों में लगी हुई पूँजी का सूद ही दिखाया गया है।

(४) तुलना के लिए केन्द्रीय आय-व्यय तथा संयुक्त प्रान्त की आय-व्यय के सन् १९२२-२३ ई० के अंक भी दिये गये हैं।

(५) विहार और उड़ीसा अब अलग-अलग प्रान्त हैं। परन्तु इन की आय-व्यय के नये अंक प्राप्त न हो सकने के कारण पहले के संयुक्त अंक ही दिये गये हैं।

(६) सिंध अब बम्बई प्रान्त से पृथक् है। उस के, तथा पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त के, जो अब एक गवर्नर का प्रान्त है, अंक न मिलने के कारण नहीं दिये जा सके हैं।

केन्द्रीय सरकार का अनुमानित व्यय

(लाख रुपयों में)

मद्द	सन् १९२२-२३	सन् १९३७-३८
१—कर प्राप्ति का व्यय :—		
आयात-निर्यात-कर	६८	१,१९
उत्पादन कर (चीनी आदि)	...	९
आय कर	४७	७५
नमक	१,७३	१,०७
अफ़ीम	१,८६	२५
अन्य कर	७९	४८
२—रेल (सूद आदि)	२५,९९	२९,९९
३—आबपाशी	११	११
४—डाक, तार	९८	८०
५—सूद	१५,२०	१४,१२
६—सिविल शासन :—		
गवर्नर-जनरल आदि	१,७०	२,७८
लेखा-परीक्षा	८२	१,०१
धार्मिक	३२	२८
राजनैतिक	२८८	१,९२
अन्य	४०२	४,४४
७—मुद्रा, टकसाल	१०,८२	३५
८—सिविल निर्माण-कार्य	१,६१	२,८७
९—सैनिक व्यय	६७,७२	४९,८४
१०—पेन्शन	२,७८	२,८०
११—विविध :—		
स्टेशनरी, प्रिंटिंग, पेन्शनादि	१,२५	९७
योग	१४०,६३	११६,११

केन्द्रीय सरकार की अनुमानित आय

(लाख रुपयों में)

मद	सन् १९२२-२३	सन् १९३७-३८
१—आयात-निर्यात-कर	४५,५२	४२,६०
२—उत्पादन कर (चीनी आदि पर)	...	७,१६
३—आय-कर }	२२,१२	१२,८५
४—कारपोरेशन-कर }		१,४५
५—नमक	६,८६	८,२५
६—अफीम	३,०९	५०
७—अन्य करों से आय	२,३६	९५
८—रेल	३१,११	३०,१४
९—आबपाशी	७	१
१०—डाक, तार	१,७५	७७
११—सूद की आय	८४	७१
१२—सिविल शासन	८७	९३
१३—मुद्रा टकसाल	३,२२	१,०७
१४—सिविल निर्माण कार्य	११	३५
१५—सैनिक आय	५,५४	५,२२
१६—विविध :— स्टेशनरी, प्रिंटिंग, पेन्शनादि	६६	१,४२
योग	१२४,१२	११४,३८

प्रान्तों का अनुमानित व्यय सन १९३७-३८ ई०

(लाख रुपयों में)

व्यय की मदें	बम्बई	मदरास	बङ्गाल	पञ्जाब	मध्यप्रान्त	आसाम	बिहार-उड़ीसा १९३४-३५	संयुक्त-प्रान्त १९३७-३८	संयुक्त-प्रान्त १९२२-२३
१—कर प्राप्ति का व्यय:—									
मालगुज़ारी	४६	२८	३८	४१	१८	१७	१६	८९	७८
आबकारी	४०	३३	१९	११	१०	५	१७	१२	६
स्टाम्प	२	५	५	२	१	...	२	३	३
जंगल	२८	४१	१६	२२	३८	१२	७	२९	७७
रजिस्टरी	६	३०	१९	१	२	१	७	५	५
मोटर	१५	४३	४	१	१	२	...	१०	...
अन्य कर	१८	..	१	१	...	...	...	...	...
२—आबपाशी	४४	४५	..	१,४०	२८	१	२३	१,१३	५८
३—सूद	१,२७	९८	२३	..	८	४	२	५७	३४

४—शासन	१,०१	२,८५	१,५३	१,१५	७१	३२	७६	१,४७	१,३८
५—न्याय	६२	९७	१,०४	५४	२८	१०	४०	७१	६६
६—जेल	१७	२४	४४	३१	९	५	१९	३१	३४
७—पुलिस	१,४१	१,६२	२,२८	१,२२	६१	३१	८५	१,६८	१,७१
८—शिक्षा	१,६१	२,५९	१,३७	१,६१	५६	३६	८२	२,०७	१,४१
९—स्वास्थ्य-चिकित्सा	७४	१,३०	८७	६६	२०	३०	३८	५९	४१
१०—कृषि	१८	३५	१७	५१	१५	८	१४	४४	२६
११—सहकारिता	७	१४	१४	१३	३	१	...	६	२
१२—उद्योग धन्धे	९	२७	१७	१८	३	३	८	१८	९
१३—अन्य शासन-व्यय	७	२२	५	२	१	१	१	१	...
१४—सिविल निर्माण कार्य	१,५०	१,३४	१,३१	१,४४	६३	५४	५१	६९	८०
१५—अकाल-निवारण	६	१	२	२	...	...	...	३	३३
१६—पेन्शन	१,१४	९३	९१	७१	४०	२३	३९	१,००	५३
१७—स्टेशनरी प्रिंटिंग	११	१७	२२	१०	५	३	८	१२	१३
१८—विविध	७	४	२७	२४	८	८	१	९	५
योग	१२११	१६२७	१२०४	११०३	४८९	२८७	५३६	१२६३	१०७३

प्रान्तों की अनुमानित आय सन १९३७-३८ ई०

(लाख रुपयों में)

आय की मदें	बम्बई	मद्रास	बङ्गाल	पञ्जाब	मध्यप्रान्त	आसाम	बिहार-उड़ीसा १९३४-३५	संयुक्त प्रान्त १९३७-३८	संयुक्त प्रान्त १९२२-२३
१—सन (जूट) पर निर्यात-कर	...	..	२,२३	...	...	...	...	...	...
२—मालगुज़ारी	३,२९	४,८७	३,५२	२,९१	२,५०	१,३२	१,८०	६,००	६,८४
३—आबकारी	३,१३	३,८७	१,३७	१,००	६६	३५	१,२७	१,५०	१,६९
४—स्टाम्प	१,४०	१,९५	३,०८	९२	४९	२०	१,१२	१,५३	१,९३
५—जंगल	४२	४७	१८	२०	४९	१६	७	४८	१,१६
६—रजिस्टरी	१५	३१	२४	९	६	२	१३	१२	१४
७—मोटर आदि कर	३८	४९	२०	७	४	२	..	१०	...
८—अन्य कर❀	४७	२	३६	३	...	...	...	४	...
९—आबपाशी	२१	२,२१	...	४,२०	४	...	२७	१,४३	९२
१०—सूद	७५	२०	७	४	४	१	५	१३	१६
११—सिविल निर्माण कार्य	६८	२९	२९	३८	१२	१७	९	१६	४

१२—न्याय	१६	१६	१४	९	५	२	५	११	९
१३—जेल	५	६	६	४	२	१	४	५	५
१४—पुलिस	९	६	८	३	३	...	२	६	२
१५—शिक्षा	१५	८	१५	१९	७	४	७	१२	७
१६—स्वास्थ्य-चिकित्सा	३२	११	११	१२	२	४	४	६	२
१७—कृषि और सहकारिता	५	८	७	१७	४	२	४	१०	५
१८—उद्योग धन्धे	५	१७	१४	६	१	१	...	५	...
१९—शासन सम्बन्धी अन्य आय †	२	७	२	२	१	१	...	१	...
२०—विविध ‡	१४	२३	१७	२०	७	२	६	११	१३
योग	११९१	१५७०	१२४८	१०७६	४७६	२४२	५१२	१२२४	१२९१

* इसमें मनोरंजन-कर तथा अन्य छोटे-छोटे कर सम्मिलित हैं।

† इसमें वैज्ञानिक विभाग की तथा शासन सम्बन्धी ऐसे विभागों की आय सम्मिलित है, जिनका नक्शे में उल्लेख नहीं है।

‡ स्टेशनरी, प्रिंटिंग सम्बन्धी आय, तथा पेन्शन के लिए दिया हुआ चन्दा आदि।